nbt.india

एकः सूते सकलम्

साहित्य और संस्कृति की द्विमासिकी

पुस्तक संस्कृति

वर्ष - 5 • अंक - 3 • मई - जून 2020 • मूल्य ₹35.00

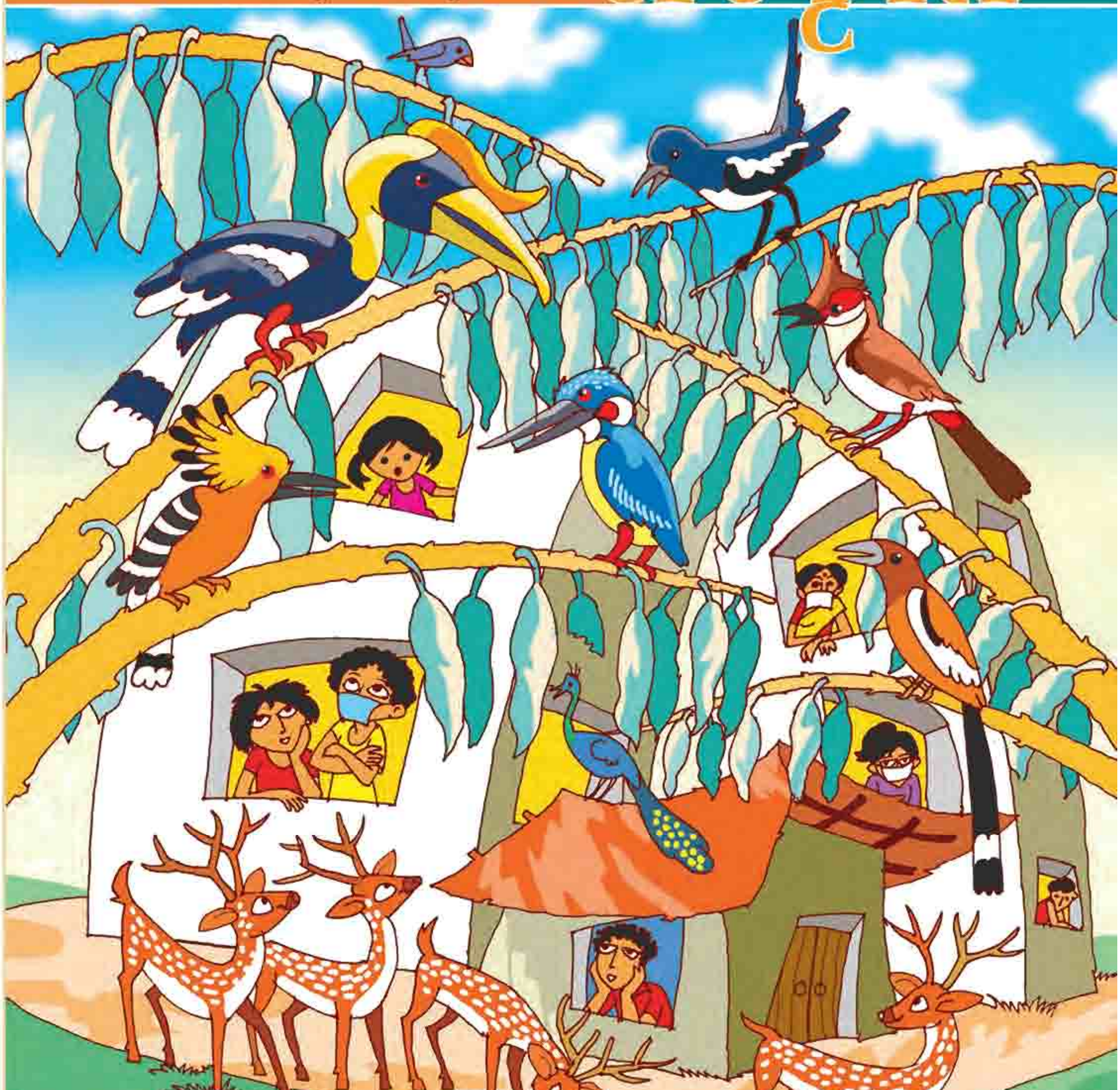

• देवनागरी लिपि की कहानी • अमर शहीद गया मुंडा • दक्षेस देश और हिंदी • बच्चे और किताबों की दुनिया

• पाषाण के प्राण • भिन्न सोच के कहानीकार गुलज़ार • भारत की पुस्तक-संस्कृति और उसका महत्व

मित्रो,

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा कोरोना महामारी के विभिन्न पहलुओं पर आम पाठकों को पठन-सामग्री उपलब्ध करवाने हेतु एक नई प्रकाशन पुस्तकमाला 'कोरोना अध्ययन पुस्तकमाला' की शुरुआत की गई है।

इस पुस्तकमाला के अंतर्गत प्रकाशित पुस्तकों का पहला सेट 'कोरोना महामारी के मनो-सामाजिक प्रभाव तथा इनका किस प्रकार सामना किया जाए' विषय पर आधारित होगा।

तदनुसार, अध्ययन के एक भाग के रूप में ऑनलाइन प्रश्नावली का एक सेट तैयार किया गया है।

अतः 'कोविड-19 के मनो-सामाजिक प्रभाव, लॉकडाउन तथा इनका किस प्रकार सामना किया जाए' के आकलन हेतु सभी 7 खंडों के हिंदी तथा अंग्रेजी प्रपत्र, जो कि राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, मानव संसाधन विकास मंत्रालय के तत्वावधान में प्रख्यात मनोवैज्ञानिकों व परामर्शदाताओं के एक समूह द्वारा तैयार किए गए हैं, जो निम्न लिंक पर देखे जा सकते हैं—

1. अभिभावक, माताएँ एवं महिलाएँ
2. बच्चे, किशोर एवं युवा
3. कर्मचारी, पेशेवर, स्वनियोजित एवं श्रमिक
4. दिव्यांगजन
5. कोविड-19 से प्रभावित परिवार
6. चिकित्सा संबंधी एवं आवश्यक सेवा-प्रदाता
7. बुजुर्ग (60 वर्ष व इससे अधिक)

इस अध्ययन को व्यापक रूप से भारत तथा विश्व हेतु उपयोगी बनाने के लिए इसमें भाग लें तथा अपने मित्रों एवं परिवार के सदस्यों को भी अपनी भावनाएँ एवं अनुभव साझा करने के लिए प्रोत्साहित करें।

शेष पृष्ठ 3 पर जारी—>

प्रधान संपादक
प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा

संपादक
पंकज चतुर्वेदी

सहायक संपादक
दीपक कुमार गुप्ता

संपादकीय सहयोग
अल्पना भसीन, विजय कुमार

विज्ञापन एवं प्रसार
कंचन वांचु शर्मा

उत्पादन
अनुज कुमार भारती, पवन दुबे

रेखाचित्र
पार्थ सेनगुप्ता

सज्जा/डिजाइन
ऋतुराज शर्मा, समरेश चटर्जी

शब्द संयोजन/कार्यालयीन सहयोग
प्रवीन कुमार, नीलकमल अरोड़ा

सदस्यता शुल्क
व्यक्तियों के लिए
एक प्रति : ₹ 35.00
वार्षिक : ₹ 225.00
(शुल्क भारत के लिए मान्य)

संपादकीय पत्र-व्यवहार
संपादक
पुस्तक संस्कृति
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
पता : नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया
फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.
फोन : 011-26707876
ई-मेलः editorpustaksanskriti@gmail.com

प्रकाशक व मुद्रक अनुज कुमार भारती द्वारा नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया (राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत) नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070 के लिए प्रकाशित और रेक्मो प्रेस प्रा. लि., ओखला, नई दिल्ली से मुद्रित।

संपादक : पंकज चतुर्वेदी

सर्वाधिकार सुरक्षित :
प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक और प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। प्रकाशित रचनाओं के विचार से प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे।

पुस्तक संस्कृति

साहित्य एवं संस्कृति की द्विमासिकी
वर्ष-5; अंक-3; मई-जून, 2020

इस अंक में

संपादकीय	*प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा*	2
पाठकीय प्रतिक्रिया		3
विरासत	देवनागरी लिपि की कहानी—*आचार्य रघुवीर*	4
शहादत	अमर शहीद गया मुंडा—*संजय कृष्ण*	7
आलेख	दक्षेस देश और हिंदी—*आलोक कुमार सिंह*	10
लोक रंग	बस्तर (छत्तीसगढ़) का लोक पर्व : 'छेरका' या 'छेरछेरा' —*डॉ. रूपेन्द्र कवि*	13
साक्षात्कार	पद्मश्री डॉ. यशोधर मठपाल : जब तक हमारी संस्कृति जिंदा रहेगी, मानवीय मूल्य जिंदा रहेंगे —*डॉ. करुणा पांडे*	16
विज्ञान	क्लाउड कंप्यूटिंग : एक उभरता हुआ करिअर —*डॉ. दीपक कोहली*	18
लेख	बच्चे और किताबों की दुनिया—*दिनेश प्रताप सिंह 'चित्रेश'*	20
आलेख	वर्तमान साहित्यिक संदर्भों में संत कबीर की प्रासंगिकता —*डॉ. प्रभु चौधरी*	23
आलेख	हमारी चिर-परिचित, बहुआयामी एवं बहुपयोगी 'गाँठ' —*अशोक कुमार श्रीवास्तव*	26
कहानी	पाषाण के प्राण—*बामाचरण मित्र*	29
शब्द ज्ञान	आओ भारतीय भाषाएँ सीखें	32
आलेख	विश्व पटल पर हिंदी शिक्षण की संभावनाएँ एवं नवाचार —*विवेक शर्मा*	34
आलेख	बस्तर में बाल साहित्य और राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत —*हरिहर वैष्णव*	36
आलेख	भिन्न सोच के कहानीकार गुलज़ार—*भगवान अटलानी*	39
आलेख	भारत की पुस्तक-संस्कृति और उसका महत्व—*प्रो. अरुण भगत*	42
पुस्तक समीक्षा		45
पुस्तकें मिलीं		62

ऋतुएँ और हम

भारतीय विचार-परंपरा में ऋतुओं का संबंध काल (समय) के साथ है। काल का विचार दो रूपों में किया गया है—एक निरंतर चलने वाला काल जिसे 'आवर्तमान काल' कहते हैं, दूसरा अखंडकाल जो समय की सीमा से नहीं जुड़ा। जो समय की सीमा से परे है, इसे महाकाल, निरवच्छिन्नकाल अथवा शाश्वतकाल कहते हैं। ऋतुओं का संबंध आवर्तमान काल से है। आवर्तमान काल में वर्ष एक गणितीय विचार और गणना है जिसका संबंध पृथ्वी द्वारा सूर्य की परिक्रमा से है। वर्ष में ऋतुओं पर विचार करें तो ये कालचक्र का भाग हैं। आवर्तकाल में वर्ष, माह, दिवस, घंटा, मिनट, सेकेंड को लेकर काल विभाजन प्रचलित है, जबकि महाकाल में इनका कोई महत्व नहीं है।

सामान्यतः ऋतुएँ चार मानी गई हैं, पर भारतीय संदर्भ में छह ऋतु मानी गई हैं—वसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमंत और शिशिर। भारतीय पंचांग के अनुसार ऋतुओं का राशियों और महीनों से गहरा संबंध है। जब सूर्य मीन और मेष राशि में विचरण करता है तब वसंत ऋतु होती है। जब सूर्य वृषभ और मिथुन राशि में विचरण करता है तब ग्रीष्म ऋतु होती है। जब सूर्य कर्क और सिंह राशि में विचरण करता है तब वर्षा ऋतु होती है। जब सूर्य कन्या और तुला राशि में विचरण करता है तब शरद ऋतु होती है। जब सूर्य वृश्चिक और धनु राशि में विचरण करता है तब हेमंत ऋतु होती है और जब सूर्य मकर व कुंभ राशि में विचरण करता है तब शिशिर ऋतु होती है। सामान्यतः ऋतुएँ दो-दो माह की होती हैं तथापि वसंत और वर्षा ऋतु दो माह से कुछ अधिक की होती हैं। इसी प्रकार माह (महीना) और नक्षत्रों का भी संबंध है। नक्षत्रों के नाम पर ही भारतीय महीनों के नाम हैं। भारतीय महीनों के नामकरण का सीधा सूत्र यह है कि जिस नक्षत्र में पूर्णिमा होगी, वही उस माह का नाम होगा। इस क्रम में जब चित्रा नक्षत्र में पूर्णिमा होगी तब उस माह का नाम 'चैत्र' होगा। विशाखा नक्षत्र में पूर्णिमा होने पर माह का नाम 'वैशाख' होगा। ज्येष्ठा नक्षत्र में पूर्णिमा होने पर माह का नाम 'ज्येष्ठ' होगा। पूर्वा आषाढ़ नक्षत्र में पूर्णिमा होने पर माह का नाम 'आषाढ़' होगा। श्रवण नक्षत्र की पूर्णिमा पर 'श्रावण' मास होगा। उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र की पूर्णिमा पर 'भाद्रपद' मास होगा। अश्विनी नक्षत्र की पूर्णिमा पर 'आश्विन (क्वार)' मास होगा। कृत्तिका नक्षत्र की पूर्णिमा पर 'कार्तिक' माह होगा। आर्द्रा नक्षत्र की पूर्णिमा पर 'अगहन' मास होगा। पुनर्वसु नक्षत्र की पूर्णिमा पर पौष (पूस) माह होगा। इसी प्रकार मघा नक्षत्र की पूर्णिमा पर 'माघ' मास होगा तथा उत्तरा फाल्गुनी पूर्णिमा पर 'फाल्गुन' मास होगा।

जिस प्रकार ऋतुओं का नक्षत्र और मास से संबंध है, उसी प्रकार ऋतुओं का वनस्पतियों से भी गहरा संबंध है। प्रत्येक ऋतु की अपनी वनस्पति होती है। उदाहरण के लिए, ग्रीष्म ऋतु में चारों ओर गरमी के कारण मनुष्य को ऐसे भोज्य एवं पेय पदार्थों की आवश्यकता होती है जो मनुष्य शरीर में जल की कमी को पूरा कर सकें तथा तापमान को कम कर सकें। उस समय प्रकृति भी ऐसे ही फलों और सब्जियों को पैदा करती है जो रसीली हों और जिनके सेवन से मनुष्य के शरीर में जल की कमी की पूर्ति हो सके, उदाहरण के लिए—खरबूजा, ककड़ी, लौकी, रसभरी, शहतूत आदि।

इसी प्रकार वर्षा और शरद खाद्यान्न की ऋतुएँ हैं। खरीफ की फसल में कई तरह की दालें, मोटा अनाज, चावल आदि का उत्पादन प्रमुखता से होता है। वर्षा में जठराग्नि कमजोर रहती है, अतः एक समय भोजन अथवा अल्प भोजन का विधान है। शीत ऋतु स्वास्थ्य की दृष्टि से अच्छी मानी जाती है। अतः तरह-तरह के फल, फूल, सब्जियाँ प्रचुरता में उत्पादित होती हैं। वसंत ऋतु में हमारी तासीर के अनुसार कुछ कड़वी चीजें खाने की परंपरा है। यह स्वास्थ्य के लिए भी लाभप्रद है। अतः चैत्र की नवरात्रि में नीम की कोंपलें खाने का विधान है। षट रस में कड़वा भी एक रस है।

सनातन परंपरानुसार चैत्र माह (मार्च-अप्रैल के बीच) में चना खाने की अनुशंसा की गई है। चना की फसल इसी ऋतु में आती है। चना के साथ कच्चा आँवला भी खाना चाहिए। वैशाख माह (अप्रैल-मई के बीच) में बेलपत्र का फल तथा करेला खाना चाहिए। ज्येष्ठ माह (मई-जून के मध्य) में तुलनात्मक रूप से ज्यादा आराम करने का आग्रह है। अत्यधिक गरमी होने के कारण भ्रमण सीमित करने तथा गुनगुना खाने का आग्रह रहता है। आषाढ़ माह (जून-जुलाई के मध्य) में हरी सब्जियों को सीमित रूप से प्रयोग करने और व्यायाम करने का आग्रह है। श्रावण माह (जुलाई-अगस्त के मध्य) में अधिक दूध, पत्तेदार सब्जियाँ तथा दूध से बनी वस्तुओं को कम खाने का आग्रह है। इस माह में हरड़ (हरिया या हर्र) खाने का आग्रह है। भाद्रपद (अगस्त-सितंबर के मध्य) में तिल खाने की व्यवस्था है। तिल से बनी चीजें खाने और रात्रि भोजन ना करने अथवा कम करने का भी आग्रह है। आश्विन (क्वार) (सितंबर-अक्तूबर के मध्य) में गुड़ खाने और कामवासना से दूर रहने का आग्रह है। कार्तिक माह (अक्तूबर-नवंबर के मध्य) में दूध पीने और मूली अपेक्षतः अधिक खाने, अगहन (मार्गशीर्ष) (नवंबर-दिसंबर) में आलू, तेल और उससे निर्मित वस्तुओं का उपयोग करने, पौष (पूस) (दिसंबर-जनवरी के मध्य) में पान खाने और दूध तथा उससे बनी वस्तुओं के उपयोग, माघ (जनवरी-फरवरी) में आलू तथा घी-खिचड़ी तुलनात्मक रूप से भोजन में अधिक खाने, फाल्गुन (फागुन) (फरवरी-मार्च) में तुलनात्मक रूप से घी अधिक खाने का आग्रह है।

आयुर्विज्ञान यह भी कहता है कि किस माह में क्या नहीं खाना चाहिए तथा क्या नहीं करना चाहिए। उदाहरणार्थ, चैत्र माह में नया गुड़, वैशाख में नया तेल, आषाढ़ में पका बेल, श्रावण में हरी सब्जी तथा दूध का भी सेवन नहीं करना चाहिए। भाद्रपद में दही, क्वार में करेला, कार्तिक में दही, अगहन में जीरा, पूस में धनिया, माघ माह में मिश्री, फाल्गुन में चना खाने से बचना चाहिए। जलवायु और स्थान भेद के कारण माह में खाने और कुछ ना खाने के भेद हो सकते हैं।

ऋतु वर्णन कवियों का प्रिय विषय रहा है। कवियों ने किसी-न-किसी रूप में ऋतुओं का वर्णन किया है। तथापि वाल्मीकि (वाल्मीकि रामायण), तुलसीदास (रामचरितमानस), कालिदास (ऋतुसंहार, मेघदूत) द्वारा किया गया ऋतु वर्णन विश्व साहित्य में विशिष्ट स्थान रखता है। वसंत कवियों की प्रिय ऋतु है।

ऋतुएँ महीनों का विभाजन हैं। ऋतुएँ हमारे मनोभावों और मनोदशा को प्रभावित करती हैं। हम यदि ऋतुओं का सम्मान नहीं करेंगे, उनके प्रभावों, अनुशासन और पर्वों की अवहेलना करेंगे तो उसका परिणाम हितकारी नहीं होगा।

(प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा)
प्रधान संपादक, पुस्तक संस्कृति

शेष आवरण पृष्ठ 2 से जारी-->"

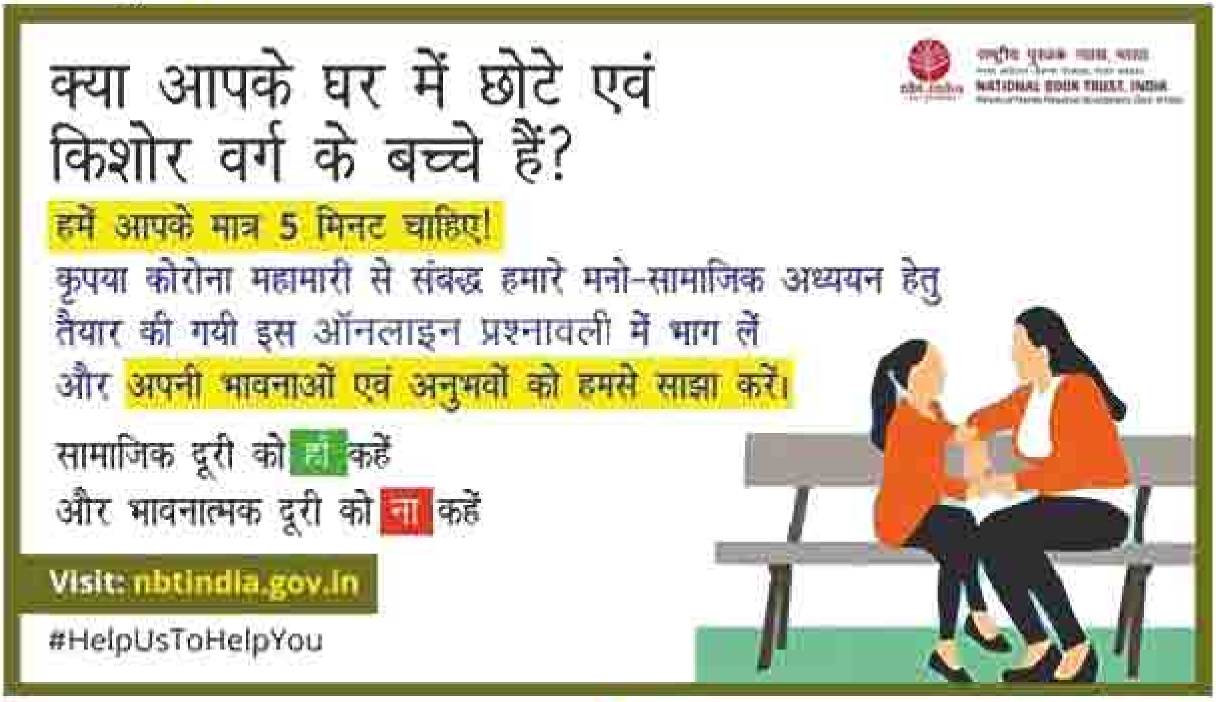

शेष आवरण पृष्ठ 5 पर जारी-->"

पाठकीय प्रतिक्रिया

आलेख 'स्वतंत्रता आंदोलन की उग्र पत्रकारिता' पढ़ा। लेख बहुत सारे क्रांतिकारी पत्रकारों के बारे में जानकारी देता है, जिनके बारे में मेरे जैसे आम नागरिक को कम ही पता है।

एक ही साप्ताहिक के आठ संपादकों को काला पानी होना आश्चर्य में डालता है। इनमें से हर एक किसी महान क्रांतिकारी से कम नहीं था, किंतु देश में इन लोगों के त्याग की कहानी पता ही नहीं है। शांतिनारायण भटनागर जी, रामदास सरतिया जी, 18 वर्ष के बाबूराम हरी जी, छोटेलाल वर्मा जी, नंद गोपाल जी, मुंशीराम सेवक जी, रामचरण जी, लद्धाराम कपूर जी, अमीरचंद बम्बवाल जी को आज कौन जानता है? आपने इनके बारे में लेख लिखकर बहुत ही सराहनीय काम किया है। आलेख बहुत अच्छा है और इन संपादकों के बारे में और जानने की जिज्ञासा उग्र हो उठी है।

योगेश सिंह, दिल्ली

आपकी राय का स्वागत है

'पुस्तक संस्कृति' पत्रिका में प्रकाशित सामग्री पर आपके सुझाव, राय का सदैव स्वागत है। देश-दुनिया के साहित्यिक- सांस्कृतिक परिवेश, प्रकाशन जगत की गतिविधियों पर आपकी सम्मति के लिए इस स्थान पर आपके पत्र/ईमेल की प्रतीक्षा है।

संपर्क :
संपादक, पुस्तक संस्कृति, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नेहरू भवन, 5, इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-2, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.
दूरभाष : 267-07758/07876/07700
ईमेल : editorpustaksanskriti@gmail.com

देवनागरी लिपि की कहानी

बच्चो, क्या तुमने कभी अपनी लिपि की कहानी सुनी है? यदि नहीं सुनी तो चलो आज तुम्हें सुनाते हैं। अ आ इ ई आदि स्वर और क ख ग घ आदि व्यंजन जिनको तुम हिंदी और मराठी लिखने के लिए प्रयोग करते हो, इनको देवनागरी लिपि कहते हैं। तुम देवताओं के देश, भारतवर्ष के निवासी हो। इस देश के नगर देवनगर, और इन नगरों में लिखी जाने वाली लिपि देवनागरी लिपि कहलाई। यह नाम कब से चला, इस प्रश्न का उत्तर निश्चित रूप से देना अभी तक संभव नहीं।

तुम कुछ गुजराती, बंगाली और कन्नड़ विद्यार्थियों को भी जानते होगे। यदि नहीं जानते तो उनको अवश्य ढूंढ़ निकालो। वे भी अ आ इ ई आदि स्वर और क ख ग घ आदि व्यंजन तुम्हारे समान ही पढ़ते हैं। किंतु लिखते समय रूप में परिवर्तन हो जाता है।

आचार्य रघुवीर

सन् 1902 में पश्चिमी पंजाब के रावलपिंडी (अब पाकिस्तान) में जन्मे आचार्य रघुवीर ने स्नातकोत्तर (पंजाब यूनिवर्सिटी), पी-एच.डी. (लंदन) तथा डी.लिट्. (हॉलैंड) की उपाधि प्राप्त करने के पश्चात लाहौर में संस्कृत विभाग के अध्यक्ष का पदभार ग्रहण किया। भारतीय साहित्य, संस्कृति और राजनीति के क्षेत्र में इनकी देन विशिष्ट एवं उल्लेख्य है।

देवनागरी, बांग्ला आदि आज से कई सहस्र वर्ष पहले आरंभ होती हैं। तुमने महाराजा अशोक की कहानी पढ़ी होगी। इनका पूरा नाम धर्माशोक है। अशोक नाम के तो कई राजा हुए हैं। धर्माशोक ने आज से 2200-2300 वर्ष पूर्व चारों ओर स्वदेश और विदेश में धर्म का प्रचार किया। इनके अपने पुत्र और कन्या ने संन्यास धारण करके लंका आदि दूर द्वीपों में भारतीय धर्म का प्रसार किया। धर्माशोक की धर्मविजय आठों दिशाओं में गूँज उठी। प्रचार के मानवीय साधनों के अतिरिक्त आपने शिलाओं और पत्थर के ऊँचे स्तंभों को भी मार्ग चलते यात्रियों के लिए स्थायी उपदेशक बनाकर खड़ा कर दिया। साहित्य में तो ऐसा वर्णन है कि धर्माशोक ने 84,000 धर्मस्तंभ, धर्मशिलाएँ और धर्म मंदिर स्थापित किए।

काल की गति विकराल है। सैकड़ों वर्षों तक इन स्तंभों और शिलाओं ने धर्म का पथप्रदर्शन किया। इन स्तंभ और शिलालेखों में से अब भी 26-27 लेख विद्यमान हैं। दक्षिण में महीशूर राज्य में मासकी, गुजरात में गिरनार, देहरादून के समीप कालसी, नेपाल में लुम्बिनी, उड़ीसा में धौली इत्यादि भारत के चारों कोनों पर धर्माशोक की धर्मपताकाएँ अभी तक लहरा रही हैं।

इन लेखों की लिपि एक है। कितने आश्चर्य की बात है। थोड़ा सोचो, आज डाक, तार, रेल और विमान के समय में भारतवर्ष के चारों कोनों में लिपियाँ अलग-अलग हों, किंतु पुराने समय में देहरादून से महीशूर तक और नेपाल व उड़ीसा से गुजरात तक एक ही लिपि विद्यमान हो। जनसाधारण सब उसी को पढ़ते और उसी को लिखते हों। भारतवर्ष की यह लिपि की एकता हमारे आज के भारत के लिए आश्चर्य की बात है। आश्चर्य ही नहीं, हमको इससे शिक्षा भी लेनी चाहिए।

शिक्षा की भी कोई विशेष बात नहीं, समस्त भारत को सर्वत्र प्रयोज्य एक लिपि की आवश्यकता भी है। भाषाएँ भिन्न हुईं तो क्या? लिपि एक होने से एक-दूसरे की भाषा को पढ़ तो सकेंगे।

आज की कहानी का प्रारंभ हम अशोक की लिपि से करते हैं। इस लिपि का नाम है ब्राह्मी। भारतीय शास्त्रों के प्रथम प्रवर्तक ब्रह्मा माने जाते हैं। इसी से हमारी पहली लिपि का नाम ब्राह्मी।

धीरे-धीरे ब्राह्मी का रूप कुछ-कुछ परिवर्तित होता गया। तीन सौ, चार सौ वर्षों के पश्चात पर्याप्त भिन्नता आ गई। कलाकारों और सौंदर्य के प्रेमियों ने ब्राह्मी लिपि को अनूठा रूप दिया। विक्रम की पाँचवीं शताब्दी में उत्तर और दक्षिण भारत की लिखाई में भेद आने लगा। केवल भारत में ही नहीं, लंका की लिपि में भी भेद आने लगा।

भेद प्रांत-प्रांत में बढ़ते गए और दसवीं शताब्दी के पश्चात आधुनिक भारतीय लिपियों के विभिन्न रूप की नींव पड़ने लगी।

नागरी के इस 2200 वर्ष के इतिहास में केवल अक्षरों के रूप का ही भेद हुआ। उसकी वर्णमाला में कोई अंतर नहीं पड़ा। जितने स्वर और व्यंजन पहले थे, उतने ही आज हैं। शब्द के आरंभ में स्वरों का रूप और होता है। शब्द के मध्य और अंत में पूर्ण रूप के स्थान में मात्राएँ आ जाती हैं। ह्रस्व अ की कोई विशेष मात्रा नहीं और न पहले कभी थी। दीर्घ आ की मात्रा दाईं ओर, इ और ई की मात्रा ऊपर की ओर तथा उ और ऊ की मात्रा नीचे की ओर सदा से लगती चली आई। इनके रूपों में तो भेद हुआ किंतु स्थिति और सिद्धांत में नहीं। हाँ, ए और ऐ की मात्राएँ पहले बाईं ओर लगती थीं, अब वे देवनागरी में ऊपर चढ़ गईं और शिर का मुकुट बन गईं। बांग्ला आदि लिपियों में तो अभी तक ए और ऐ की मात्राएँ ब्राह्मी के समान बाईं ओर लगती हैं।

> “देवनागरी में एक और विशेषता आई जो ब्राह्मी में न थी। वह है शिरोरेखा। म और ध को छोड़कर सब अक्षरों को आड़ी रेखा के नीचे लिखा जाता है। जैसे तोरणमाला के सूत्र से अशोक के पत्ते लटकते रहते हैं उसी प्रकार लेखकों ने अपनी सुविधा के लिए एक लंबी रेखा खींचकर उसके नीचे स्वर-व्यंजनों को जोड़ दिया। यह नागरी लिपि का भूषण है। शिरोरेखा विहीन गुजराती लिपि कैसी सूनी-सूनी लगती है!”

अब आओ ओ और औ की मात्राओं पर। तनिक सोचो तो कि ये कैसे बनती हैं। ब्राह्मी में दाईं ओर आ और बाईं ओर ए की मात्रा लगाने से ओ की प्राप्ति होती थी। औ के लिए आ और ऐ की गठजोड़ कर देते थे। आज भी वही नियम है। अब रह गई ऋ की मात्रा जो कृषि में प्रयोग होती है और जिससे सृष्टि बनती है। यह बेचारी सदा से ही चरणों की दासी रहती आई।

अभी हमने तुमको बताया कि ह्रस्व अ के लिए कोई विशेष मात्रा नहीं होती। व्यंजन का पूरा रूप लिखने से उसके पश्चात ह्रस्व अ की प्रतीति हो जाती है। किंतु यदि व्यंजन के पीछे ह्रस्व अ भी न हो और किसी दूसरे स्वर की मात्रा भी न हो, अर्थात ऐसे कहो कि एक व्यंजन के पीछे दूसरा व्यंजन सीधा ही चला आए तो उसका क्या लिखित रूप होगा, जैसे—रत्न। यहाँ त और न के बीच में कोई स्वर नहीं। महाराजा अशोक के समय में त के नीचे न को लटका देते थे। त और न का इतना घनिष्ठ संबंध माना जाता था कि उनका वियोग करना संभव न था। पुरानी देवनागरी लिपि में भी यही नियम पालन होता रहा। किंतु कुछ समय से यह ऊपर और नीचे का संबंध पड़ोसियों का संबंध बना दिया गया। अब त के नीचे न नहीं लिखते। त के पास न लिखते हैं और उनकी समीपता दिखाने के लिए त के दाईं ओर की खड़ी रेखा निकाल देते हैं। जब कुछ शताब्दी पहले पुरानी देवनागरी में त और न ऊपर-नीचे लिखते थे, तब भी तो दोनों की दाईं ओर की खड़ी रेखा एक ही लिखी जाती थी।

संयुक्त व्यंजनाक्षरों को अब भी तुम्हारे कन्नड़ साथी ऊपर-नीचे की प्राचीन पद्धति से लिखते हैं।

देवनागरी में एक और विशेषता आई जो ब्राह्मी में न थी। वह है शिरोरेखा। म और ध को छोड़कर सब अक्षरों को आड़ी रेखा के नीचे लिखा जाता है। जैसे तोरणमाला के सूत्र से अशोक के पत्ते लटकते रहते हैं उसी प्रकार लेखकों ने अपनी सुविधा के लिए एक लंबी रेखा खींचकर उसके नीचे स्वर-व्यंजनों को जोड़ दिया। यह नागरी लिपि का भूषण है। शिरोरेखा विहीन गुजराती लिपि कैसी सूनी-सूनी लगती है!

तुम्हारी बड़ी लालसा होगी कि नागरी के सबसे पुराने ब्राह्मी रूप का दर्शन हो। किंतु अभी भारत में केवल नभोवाणी के द्वारा आप बातचीत ही सुन सकते हैं, इसके साथ चित्र नहीं देख सकते। यदि देख सकते तो आज मैं तुमको सारी लिपि का तो नहीं किंतु कुछ-कुछ अक्षरों का पूरा इतिहास दिखलाता। अब भी तुमको वर्णन द्वारा ही दो-चार सरल रूपों का ज्ञान कराएँगे।

ब्राह्मी लिपि संसार की सरलतम लिपि है।

इ का रूप केवल तीन बिंदु हैं—एक ऊपर, दो नीचे। इनको मिला देने से त्रिकोण बन जाता है। यह त्रिकोण ब्राह्मी ए का याची है।

क का रूप दो रेखाओं से बनता है—एक खड़ी, दूसरी उसको काटती हुई आड़ी रेखा। अंग्रेजी V को उलटा कर दो तो वह ब्राह्मी ग बन जाएगा। उसी प्रकार अंग्रेजी के कई और अक्षर हैं जिनकी आकृति ब्राह्मी के अक्षरों से मिलती है। उ की आकृति L जैसी, ज की आकृति E जैसी, ट की C जैसी, ठ की O जैसी। गोलरूप के कारण से तंत्र साहित्य में ठ को कमल कहा गया है। यदि गोले के बीच में एक बिंदु लगा दिया जाए तो थ बन जाता है। अंग्रेजी के Y को उलटा कर दें तो ब्राह्मी का त और अंग्रेजी के T को शीर्षासन कराने से ब्राह्मी का

न बन जाता है। आधुनिक हिंदी के अंक 4 का रूप ब्राह्मी के म का रूप है, इत्यादि-इत्यादि।

अनुस्वार और विसर्ग के रूप में प्राचीन काल से आज तक कोई भेद नहीं पड़ा। ये ज्यों-के-त्यों चले आ रहे हैं। इनका रूप इतना सरल है कि 22 शताब्दियों तक लगातार प्रत्येक पीढ़ी के करोड़ों बालकों, युवकों, मूर्खों और विद्वानों, व्यापारियों और दार्शनिकों के प्रमाद, शीघ्रता, हस्त-भेद आदि के होते हुए भी इन चिह्नों में परिवर्तन न आ सका।

ब्राह्मी जननी का परिवार संसार में सबसे बड़ा परिवार है। अथवा यूँ कहें कि नागरी लिपि की बहनें असंख्य हैं। धर्माशोक के समय से आज तक जिन लिपियों का उद्गम ब्राह्मी से हुआ उनकी संख्या निश्चय करना संभव नहीं। भारत में अब भी जो नागरी की बहनें बची हैं, उनका पूर्णतया संग्रह किसी स्थान पर, किसी विद्वान ने नहीं किया। कश्मीर से आरंभ करें तो वहाँ शारदा (जिसका श्र हमारे म के समान), जम्मू प्रांत में आकर टाकरी और पंजाब में गुरुमुखी। सिंधी लिपि 19वीं शताब्दी तक विद्यमान थी। उसके पश्चात उसकी हत्या करके अरबी लिपि ने उसका स्थान लिया। पश्चिमी पंजाब में अनेक महाजनी लिपियाँ अभी तक चली आ रही हैं। इनका प्रयोग केवल गाँव के महाजन लेन-देन में करते हैं। ये लिपियाँ अधिकांश अपूर्ण हैं। किंतु निकली सब ब्राह्मी से ही हैं।

नेपाल की 'नेवारी' नागरी की बहन है। नेपाल और कश्मीर की लिपियों के आधार पर ही तो आज से चौदह सौ, पंद्रह सौ वर्ष पूर्व मध्य एशिया की लिपियों का जन्म हुआ था। और तो क्या, तुर्की भाषा तक हमारी लिपि में लिखी जाती रही। सातवीं शताब्दी में तिब्बत की लिपि का विकास भारतवर्ष से ही हुआ। आज भी यह लिपि हिमालय के उत्तरवर्ती प्रदेशों में मंगोलिया की चरम सीमा तक बड़े प्रेम, श्रद्धा और परिश्रम से पढ़ी-लिखी जाती है। मंचूरिया, कोरिया और जापान के धार्मिक और गुह्य मंत्र अभी तक भारतीय लिपि में अंकित किए जाते हैं। सभ्यता के कारण नागरी जानने वाला व्यक्ति बड़ी शीघ्रता से इनको पहचानने लगता है।

जिस प्रकार पश्चिमी पंजाब में महाजनी लिपियाँ प्रचलित हैं, उसी प्रकार से अन्य प्रदेशों में भी अनेक व्यापारी लिपियाँ चल रही हैं। किंतु मुद्रण में उनका उपयोग न होने से ये दृष्टि के सामने नहीं आतीं और लुप्त होती जा रही हैं।

बंगाल में बांग्ला, उड़ीसा में उड़िया और दक्षिण में तमिल, कन्नड़, तेलुगु और मलयालम नागरी की बहनें हैं। भारत से बाहर, लंका में सिंहली, बर्मा में बर्मी, स्याम और कम्बोज में थाई और कम्बोजी, सुमात्रा में नाटक, जावा में जावी व बाली और लोम्बोक में बाली लिपि देवनागरी की बहनें हैं।

बच्चो, तुमको अभिमान होना चाहिए कि तुम्हारी लिपि का एक बहुत बड़े परिवार से संबंध है।

नागरी लिपि की कहानी पूरी न होगी यदि मैं दो-चार शब्दों में तुम्हें इसके विशेष गुणों का ज्ञान न कराऊँ। नागरी और इसकी बहनें वैज्ञानिक लिपियाँ हैं। वैज्ञानिक का अर्थ है एक ध्वनि के लिए एक चिह्न और एक चिह्न के लिए एक ध्वनि। अंग्रेजी में तो ऐसा नहीं होता। C का उच्चारण कहीं क और कहीं स। एक cycle शब्द में ही C के दो उच्चारण विद्यमान हैं।

ह्रस्व और दीर्घ स्वरों के पृथक रूप हमारी लिपियों की विशेषता है। दीर्घ ई के लिए अंग्रेजी में कितनी कठिनाई पड़ती है। एक अक्षर के न होने के कारण दो-दो अक्षरों को जोड़ना पड़ता है। कभी कोई दो, और कभी कोई दो। Feel में दो e e, heal में e a, receive में ei और achieve में ie इत्यादि, इत्यादि।

संयुक्त व्यंजनों के कारण भी हमारी लिपि अंग्रेजी की अपेक्षा छोटी हो गई है। यदि अपनी पेटी पर तुम्हें नाम लिखाना हो तो अंग्रेजी की अपेक्षा नागरी कहीं सस्ती रहेगी। एक उदाहरण लो—लक्ष्मी चन्द्र। नागरी में चित्रकार चार अक्षरों के पैसे लेगा। अंग्रेजी में चौदह अक्षरों के—LAKSHMI CHANDRA.

नागरी लिपि की कहानी भारतीय ध्वनिशास्त्र की कहानी है। हमारे पूर्वजों ने कितने सुंदर और वैज्ञानिक रूप से ध्वनियों को अक्षरों में प्रकट किया, यह आधुनिक ध्वनिविज्ञान के आश्चर्य का कारण है। नागरी लिपि की कहानी भारतीय सभ्यता और उसके भीतर व बाहर प्रसार के साथ घनिष्ठ रूप से संबद्ध है। जिस प्रकार से तुम धर्म, ज्ञान और कला के महान गुरु भारत के उत्तराधिकारी हो, उसी प्रकार सभ्य जीवन के आधार नागरी लिपि के भी तुम उत्तराधिकारी हो। इस कहानी को सुनने के पश्चात अब जब कभी तुम अपनी लेखनी चलाया करोगे तो उसके पीछे मन में एक विशेष गौरव की भावना रहेगी।

(आचार्य रघुवीर द्वारा लिखित व राष्ट्रीय पुस्तक न्यास द्वारा प्रकाशित 'राष्ट्रभाषा और भारत-भारती' पुस्तक से साभार)

• • •

अमर शहीद गया मुंडा

देश की आजादी में अपना सब कुछ न्यौछावर कर देने वाले ऐसे बहुत से गुमनाम सिपाही रहे जिनके बारे में हमारा इतिहास मौन है। बहुतेरों के बारे में हम नहीं जानते। कुछ ऐसे हैं, जो अपने आस-पास किंवदंतियों के रूप में जीवित हैं, लेकिन कभी उन्हें किंवदंतियों से उठाकर इतिहास में स्थापित करने की हमने कोशिश नहीं की। आजादी के सात दशक बाद हमने सांस्थानिक स्तर पर प्रयास नहीं किया कि हम गाँव-गाँव ऐसे वीर-बहादुरों की खोज-खबर ले सकें। निजी स्तर पर लोगों ने काम जरूर किए, लेकिन ऐसे प्रयास की एक सीमा होती है। हम आज एक ऐसे ही गुमनाम सिपाही की चर्चा करने जा रहे हैं, जिसका नाम गया मुंडा था। गया धरती आबा बिरसा मुंडा का दाहिना हाथ माने जाते थे।

संजय कृष्ण

जन्म : कमालियाँ स्थान, गाजीपुर, उत्तर प्रदेश।

शिक्षा : स्नातकोत्तर।

संप्रति : दैनिक जागरण समाचार पत्र में मुख्य उपसंपादक।

संपादन : जमदग्नि वीथिका नामक पत्रिका (1997-2005)

लेखन एवं प्रकाशन : विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेखन, एक दर्जन से अधिक कृतियाँ प्रकाशित।

पुरस्कार : केंद्रीय पर्यटन मंत्रालय की ओर से प्रथम राहुल सांकृत्यायन पर्यटन पुरस्कार।

संपर्क : मोबाइल– 9835710987

ईमेल– skrishnasanjay1973@gmail.com

इसके पहले थोड़ी पृष्ठभूमि भी जान लेनी चाहिए। तब झारखंड, बिहार, ओडिशा सब बंगाल के अंतर्गत थे। 1765 में शाह आलम द्वितीय द्वारा ईस्ट इंडिया कंपनी को बंगाल, बिहार, ओडिशा की दीवानी मिली तो झारखंड भी अंग्रेजी राज के अंतर्गत एक कर चुकाने वाला क्षेत्र बन गया। अब तक स्वाधीन और अपने तई शासन के अधीन रहने वाला आदिवासी समुदाय के लिए यह सबसे बड़ा आघात था। जंगलों और पहाड़ों में असंतोष के बादल मंडराने लगे। धीरे-धीरे जंगलों से चिनगारी उठने लगी। यह ध्यान रखना चाहिए कि अंग्रेजों की निर्णायक जीत में झारखंड के राजमहल स्थित उधवानाला की महत्वपूर्ण भूमिका रही, जहाँ मीर कासिम की सेना को पराजय का मुँह देखना पड़ा और फिर अंग्रेजों के लिए झारखंड में प्रवेश आसान हो गया। राजमहल को ही बंगाल का प्रवेश द्वार कहा जाता है। अंग्रेजों ने भी इसी रास्ते झारखंड में प्रवेश किया, लेकिन यह प्रवेश उनके लिए बड़ा भारी पड़ा। कदम-कदम पर उन्हें विरोध का सामना करना पड़ा। यह इलाका पहाड़िया आदिवासियों का था, लेकिन 1820 के बाद जब संताली इस इलाके में बसने लगे तो आगे चलकर यह संताल परगना के नाम से संबोधित होने लगा। तब, पहाड़ियों ने अंग्रेजों की हर नीति का विरोध किया। आजाद रहने वाली जाति अंग्रेजों का कानून मानने को कतई तैयार नहीं थी। अंग्रेजों के पास आधुनिक हथियार थे तो इनके पास पारंपरिक हथियार। 1781-82 में महेशपुर की रानी सर्वेश्वरी ने कंपनी शासन के विरुद्ध लड़ाई लड़ी और पहाड़िया आदिवासियों ने रानी की हर स्तर पर मदद की। पहाड़िया नायक तिलका मांझी ने गुरिल्ला दल बनाकर अंग्रेजी सेना को काफी नुकसान पहुँचाया और उसने भागलपुर में जाकर कलक्टर क्लीवलैंड की 13 जनवरी, 1784 को हत्या कर दी। क्लीवलैंड को पहाड़िया विद्रोह को शांत करने के लिए भेजा गया था। इन्हें काफी सफलता भी मिली। इन्होंने पहाड़िया युवाओं को लेकर हिल रेंजर्स बनाया था, लेकिन इनकी धोखेबाजी ने पहाड़िया आदिवासियों को नाराज कर दिया और इन्हें अपनी जान देकर कीमत चुकानी पड़ी। तिलका मांझी को भी गिरफ्तार कर

लिया गया और 1785 में फाँसी दे दी गई। इसी दौर में छोटानागपुर के तमाड़ इलाके में भी 1782 से लेकर 1798 तक विद्रोह की आग जलती रही। 1820 में सिंहभूम के इलाके में हो विद्रोह हुआ। 1831-32 में महान कोल विद्रोह हुआ। विद्रोह सिर्फ अंग्रेजों के खिलाफ ही नहीं, जमींदारों व बाहरी लोगों के खिलाफ भी था। 1832 में ही राँची जिले के सिलागाई गाँव के बुधु भगत, जो उराँव जनजाति के थे, ब्रिटिश शासन के खिलाफ उठ खड़े हुए। ये धार्मिक नेता थे, बाद में राजनीतिक आंदोलन के अगुवा बने। अपने शिष्यों और परिवार के साथ ये शहीद हो गए। इसी के बाद मानभूम एवं सिंहभूम में भूमिज विद्रोह हुआ। भूमिज भी मुंडा आदिवासियों का एक समूह है। इन विद्रोहों के बीच पहाड़िया आंदोलन भी तिलका मांझी के शहीद होने पर भी शांत नहीं हुआ। इसके बाद अंग्रेजों ने पहाड़िया को अपने वश में रखने के लिए उनकी भूमि को सन् 1833 में दामिन-ए-कोह नाम देकर अलग क्षेत्र घोषित किया।

इस शांति-अशांति, तनाव-विद्रोह की निरंतरता के बाद सन् 1855 में संताल हूल फूट पड़ा। यह झारखंड का पहला विशाल और संगठित विद्रोह था, जिसमें संताल आदिवासियों के साथ हर कौम का साथ मिला। छोटानागपुर के अंचल में भी, 1855 के हूल और 1857 के पहले स्वतंत्रता आंदोलन के ढाई दशक बाद ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ एक और आंदोलन उठ खड़ा हुआ, जिसे पहचाना बहुत देर बाद गया, लेकिन यह उलगुलान इतिहास में एक नया मोड़ साबित हुआ। अंग्रेजों ने भी इससे सबक लिया और खीझकर एक नया कानून बनाया, सीएनटी एक्ट। इस आंदोलन की शुरुआत खूँटी जिले से हुई और इसके नायक थे बिरसा मुंडा। इन्हीं बिरसा मुंडा के दाहिने हाथ थे गया मुंडा। खूँटी जिले के मुरहू के कुदा पंचायत के एटकेडीह में इनका जन्म हुआ था। अंग्रेजों को भगाने के लिए इन्होंने बिरसा मुंडा का न केवल साथ दिया था, बल्कि पूरा परिवार ही इनका क्रांतिकारी था। महिला हो या बच्चे, सभी ने इसकी कीमत भी चुकाई। ऐसा बलिदानी परिवार इतिहास में दुर्लभ है, लेकिन जो जगह इस बलिदान परिवार को इतिहास और झारखंड में मिलनी चाहिए, वह आज तक नसीब नहीं हुई। इस विप्लवी को तो बहुत से लोग जानते तक नहीं। बिरसा का पूरा आंदोलन कुल पाँच साल चला, 1895 से जून 1900 तक।

कुमार सुरेश सिंह इस महान क्रांतिकारी को याद करते हुए लिखते हैं कि बिरसा का आंदोलन जब चरम पर था, तब खूँटी के एटकेडीह, सैको, रकब में हुए युद्धों के बाद गया मुंडा तथा बिरसाइतों को गिरफ्तार करने के लिए खूँटी का प्रधान कांस्टेबल सैको पहुँचा। उसे वहाँ पता चला कि 5 जनवरी, 1900 को आंदोलनकारियों की एक बैठक गया मुंडा के घर पर होनी है। प्रधान कांस्टेबल ने दो सिपाहियों तथा दो चौकीदारों को गया मुंडा के यहाँ भेजा। जब तक ये गया मुंडा के गाँव एटकेडीह पहुँचते, इसके पूर्व वहाँ बैठक संपन्न हो चुकी थी। बैठक से उठकर 80 आंदोलनकारियों का दल गया मुंडा के नेतृत्व में गाँव के पूरब स्थित तजना नदी के तट पर पहुँचा। उन्हें गुप्त सूचना मिल चुकी थी कि पुलिस दल उन्हें पकड़ने के लिए गाँव आ रहा है। पुलिस दल पहले एटकेडीह पहुँचा। वहाँ गाँव की महिलाओं ने गुप्त एवं निश्चित योजना के अनुसार पुलिस वालों को सूचना दी कि सभी तजना नदी की ओर चले गए हैं। पुलिस दल नदी की ओर चला गया। वे सभी तत्पर थे। पुलिस दल को तजना नदी के किनारे आते हुए देखकर गया मुंडा चिल्लाए— "सामरे हिजुलेना को मारगो, कोये" (साँभर हिरन आ गए हैं उनको मार गिराओ)। सशस्त्र आंदोलनकारियों को अपनी ओर आते देख सिपाही दो दलों में विभक्त होकर भाग खड़े हुए। जयराम नामक सिपाही तथा एक चौकीदार ने घने जंगल में भागने की चेष्टा की, किंतु गया मुंडा के पुत्र सामरे मुंडा ने जयराम पर तीर चला दिया। वह घायल होकर भागने लगा, किंतु एक खेत में वह गिर गया। गया मुंडा ने पकड़कर उसे मार दिया। बाकी बच निकले। घटना की सूचना मिलने के बाद बड़ी सावधानी से प्रधान कांस्टेबल घटनास्थल पर आकर सिपाहियों की लाश सैको ले गया और फिर इन लाशों को चक्कादार रास्ते से राँची लाया गया।

जब गया मुंडा अपने सहयोगियों के साथ घर लौटे तो गाँव की महिलाओं ने उत्साहपूर्वक उनकी आगवानी की। उनके पाँव पखारे। पुरुषों के मुँह से उत्साह के वातावरण में शिकार का यह गीत फूट पड़ा—

हथियार हमारे हाथों में चमचमाते हैं।
हम एक पंक्ति में खड़े हैं।
हमारे बायें हाथ में धनुष है, और दायें में तीर
हमारे हाथों में हथियार चमचमाते हैं।
ओ बिरसा, हम एक पंक्ति में खड़े हैं।
सईल पहाड़ी पर
बिरसा ने डेरा डाल दिया।
ओ, बिरसा तो अपने हाथ से धनुष और तीर चला रहे हैं।
उन्होंने जोजोहातु में भी डेरा डाला,
वे सली हातु में भी थे
और डोम्बारी पहाड़ी पर भी।
इस कारण ये जगहें काँप उठी हैं।

इस तरह के गीत बिरसा के अनुयायियों में जोश भरते थे। राँची का डिप्टी कमिश्नर स्ट्रीटफील्ड, जो बंदगाँव में ठहरा था, उसे यह खबर मिली और 6 जनवरी, 1900 को एटकेडीह पहुँचा। 11 बजे दिन में वह गया मुंडा के घर पहुँच गया। उसने बरामदे में किसी भी व्यक्ति को नहीं पाया। लेकिन घर के अंदर सभी थे, इसका आभास मिल रहा था। एक दारोगा ने मुंडारी में आवाज देकर घर में से किसी को भी बाहर आने को कहा, किंतु अंदर से कोई जवाब नहीं मिला। एक सिपाही ने अंदर प्रवेश करने की चेष्टा की, किंतु तुरंत ही वह घर से बचाओ-बचाओ चिल्लाते हुए बाहर निकल आया। घर के अंदर सभी परिजन हथियार से लैस थे। डिप्टी कमिश्नर ने हथियारबंद परिवार को आत्मसमर्पण करने को कहा, लेकिन उसकी बात का कोई असर

नहीं हुआ। बार-बार वह आत्मसमर्पण की बात दुहरा रहा था, लेकिन उसे भीतर से कड़ा जवाब मिला। गया मुंडा ने दहाड़ते हुए कहा, घर उनका है और डिप्टी कमिश्नर को मेरे घर में प्रवेश करने का कोई अधिकार नहीं है। अंदर आने की कोशिश की तो परिणाम अच्छा नहीं होगा। अंग्रेज हमारे दुश्मन हैं और अंग्रेजों का हुक्म मानने के लिए हम बाध्य नहीं हैं। गया मुंडा के साथ स्त्रियाँ भी थीं। उनका परिवार था। बेटे, बेटियाँ और बहुएँ थीं। इस कारण डिप्टी कमिश्नर बंदूक का प्रयोग नहीं करना चाहता था। घर में घुसकर उन्हें पकड़ना भी आत्महत्या के समान था। ऐसे में खबर मिली कि आस-पास के क्षेत्र में लगभग 100 क्रांतिकारी छिपे हुए हैं, जो गया की सहायता के लिए कभी भी धावा बोल सकते हैं। स्थिति विकट हो रही थी और गया को पकड़ना भी था। उन्हें घर से बाहर निकालने की डिप्टी कमिश्नर को एक तरकीब सूझी। उसने घर के पीछे से घर में आग लगा दी। हवा बहुत तेज थी। घर तेजी से जलने लगा। घर के लोग आग की आँच को देर तक बरदाश्त नहीं कर सकते थे। उनके पास बाहर निकलने के अलावा कोई दूसरा चारा नहीं था। गया मुंडा सहित घर के लोग जल्दी-जल्दी बाहर निकले। गया के हाथ में एक लंबी लाठी थी। उसका छोटा लड़का बलुवा तथा 14 साल का पोता रामू धनुष और तीर लिए हुए था। दो पुत्रवधुओं में से एक के हाथ में डाली तथा लेंबू के हाथों में लाठी, तलवार और टाँगी थी। गया मुंडा नाच रहा था और तलवार भाँज रहा था। डिप्टी कमिश्नर को कुछ समझ नहीं आ रहा था। किसी तरह डिप्टी कमिश्नर ने अपनी पिस्तौल से गया मुंडा की दाहिनी बाँह और कंधे को लक्ष्य कर गोली चला दी। गोली ठीक जगह लगी और वह सँभलते हुए तलवार लेकर झपट पड़े। डिप्टी कमिश्नर ने फिर गोली चलाई, लेकिन निशाना चूक गया। इसके बाद दोनों में हाथापाई होने लगी। गया मुंडा ने डिप्टी कमिश्नर के बायें कंधे पर तलवार से वार किया, लेकिन ठीक से नहीं लगी। बस खरोंच आई। दोनों लड़ते हुए आखिर जमीन पर गिर गए। एक औरत डिप्टी कमिश्नर पर वार करने लगी। गया मुंडा की पत्नी माकी डिप्टी कमिश्नर को काटना चाहती थी। किसी तरह पुलिस के जवानों ने दोनों को अलग किया। औरतें भी जमकर लड़ीं, जब तक उनका हथियार छीन नहीं लिया गया। ये वीरांगनाएँ ऐसी थीं कि अपना बच्चा भी साथ लेकर लड़ रही थीं।

गया मुंडा के पूरे परिवार ने अदम्य साहस का परिचय दिया। इसके बाद सभी को गिरफ्तार कर लिया गया। पर गया मुंडा का बड़ा बेटा डोंका मुंडा पकड़ा नहीं गया, क्योंकि उस दिन वह वहाँ नहीं था। वह अलग से आंदोलन को धार देने के लिए बैठकें कर रहा था। बहुत दिन बाद डोंका ने आत्मसमर्पण कर दिया। सभी पर मुकदमा चला। मई से दिसंबर, 1900 तक इनके खिलाफ कोर्ट में सुनवाई होती रही। गया मुंडा और उसके मँझले पुत्र सानरे को फाँसी की सजा दी गई। 22 अक्तूबर, 1901 को सुबह छह बजे फाँसी पर लटका दिया गया। बड़े पुत्र डोंका को आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई। गया मुंडा की पत्नी माकी को दो साल की कठोर सजा हुई। गया मुंडा की पुत्रियों एवं पुत्रवधुओं को भी तीन महीने की कठोर सजा हुई। गया मुंडा के दूसरे बेटे जयमासी को भी आजीवन देश निर्वासन का दंड मिला। इस प्रकार पूरे परिवार को अंग्रेजों ने सजा दी।

कुमार सुरेश सिंह ने 'बिरसा और उनका आंदोलन' में लिखा है कि राँची में जनवरी से अक्तूबर 1900 तक 348 मुंडा अभियुक्तों पर मजिस्ट्रेट ने जाँच और मुकदमों की कार्यवाही की। यह एक दीर्घकालिक कार्य था। राँची में बिरसा-अनुयायियों पर मुकदमों की सुनवाई के लिए जे.ए. प्लेटेल विशेष मजिस्ट्रेट नियुक्त किए गए। मुंडाओं के वकील थे जेकब। ये सरदार आंदोलन के सबसे बड़े समर्थक थे। बिरसा आंदोलनकारियों का मुकदमा बड़ी निर्भीकता से लड़ा। पर मजिस्ट्रेट ने अपना मन बना लिया था। मुंडाओं को लेकर अंग्रेज किस तरह पूर्वाग्रस्त थे कि बिना किसी अपराध के भी बहुत से मुंडा युवक जेलों में बंद कर दिए गए थे। कलकत्ता से प्रकाशित एक बंगाली समाचार पत्र ने अपने संपादकीय में लिखा कि अभागे मुंडाओं ने उतने पाप नहीं किए थे, जितने से कहीं ज्यादा पाप उनके विरुद्ध किए जा रहे थे। पत्र ने लिखा कि स्ट्रीटफील्ड का यह कार्य सरासर आँखों में धूल झोंकने जैसा था। इसमें कोई संदेह नहीं कि अधिकारी न केवल मुंडाओं के विरुद्ध दुर्भावना से प्रेरित थे, बल्कि वे मन-ही-मन पिछले दिनों हुए मुंडा विद्रोह के लिए प्रतिशोध की आग में जल रहे थे। दरअसल, मुंडा विद्रोह से अंग्रेज बहुत आतंकित हो गए थे। इसलिए, जो भी पकड़ में उनके आया, वह सजा का हकदार बन गया। चाहे उसने अपराध किए हों या नहीं। गया मुंडा और उनके परिवार की शहादत बेकार नहीं गई। अंग्रेजों को उनके अधिकार देने पड़े। उनकी सामाजिक व्यवस्था में अपना हस्तक्षेप बंद करना पड़ा और लगान से भी उन्हें मुक्त रखा गया। और, सबसे बड़ा, छोटानागपुर काश्तकारी कानून 1908 में अस्तित्व में आया। मुंडा हारकर भी जीत गए थे और अंग्रेज जीतकर भी हार गए थे।

एक बात गया मुंडा के गाँव की। खूँटी जिले के सैको या साइको से कुछ दूरसी पर गया मुंडा का घर है। गाँव का नाम एटकेडीह। उनके वंशज रहते हैं। घर अब पक्का है, लेकिन छत लोहे की चादर की। घर को देखते हुए 5 जनवरी, 1900 का दृश्य मूर्तिमान हो जाता है। गाँव में हर घर एक दूरी पर है। मैदानी इलाकों की तरह नहीं। एक कोलतार की सड़क गाँव तक गई है। गाँव के चौराहे पर 6 जनवरी, 2019 को एक प्रतिमा जरूर लग गई है। गया मुंडा के घर के बाहर एक छोटा-सा बोर्ड दीवार के सहारे खड़ा था—जिस पर लिखा था—गया मुंडा शहीद स्थल। गया मुंडा के वंशज खेती-बाड़ी करते हैं। उस घर को एक तीर्थ के रूप में विकसित होना चाहिए था, लेकिन हमारी सरकार और हम उतने उदार नहीं। और अंत में, खूँटी का जंगल अभी शांत नहीं हुआ। रह-रहकर चिनगारी उठती रहती है। अभी पत्थलगड़ी को लेकर सुलग रहा था।

शायद, हम इतिहास से सबक लेने को तैयार नहीं...।

दक्षेस देश और हिंदी

आज जबकि पूरा विश्व एक बाजार बन चुका है और हमारा जन-जीवन भी बाजार द्वारा ही संचालित हो रहा है तब भाषा का बाजार से विमुख होने का सवाल ही नहीं उठता है। बाजार में हमेशा से 'जो दिखता है वही बिकता है' की शर्त लागू होती है। भाषा के संदर्भ में और विशेषकर हिंदी के बारे में यह बात ठीक इसी तरह से लागू होती है। हिंदी न केवल वैश्विक फलक पर निरंतर दिख रही है, बल्कि यह आज बाजार द्वारा प्रयुक्त प्रथम भाषा बन चुकी है। आज दुनिया भर के विद्यार्थियों के पास हिंदी सीखने के अपने-अपने प्रयोजन हैं। बाजार-व्यापार-रोजगार आदि अनेक कारणों से हिंदी को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सीखा और समझा जा रहा है। दुनिया के विभिन्न देश हिंदी के महत्व से अनभिज्ञ नहीं हैं। वर्तमान वैश्विक परिप्रेक्ष्य में हिंदी अनेक कारणों से अपनी पहचान और महत्व कायम कर रही है।

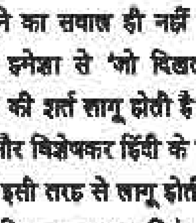

आलोक कुमार सिंह

जन्म : फरवरी 1986 मानपुर, रायबरेली, उत्तर प्रदेश।

शिक्षा : एम.ए., एम.फिल. (हिंदी), पीएच.डी.।

संप्रति : सहायक प्राध्यापक, अटल बिहारी वाजपेयी नगर निगम डिग्री कॉलेज, लखनऊ।

लेखन एवं प्रकाशन : दो पुस्तकें 'स्त्री चिंतन के विविध आयाम', 'स्त्री मुक्ति के प्रश्न और समकालीन विमर्श' प्रकाशित, विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में पिछले 10 वर्षों से लेखन।

संपर्क : मोबाइल— 9450143544
ईमेल— alsochauhan777@gmail.com

आँकड़ों की बात करें तो आज विश्व के लगभग 200 विश्वविद्यालयों और संस्थाओं में हिंदी का पठन-पाठन हो रहा है।

एशिया महाद्वीप में भारत के अलावा पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका, नेपाल, भूटान, म्यांमार, चीन, जापान, दक्षिण कोरिया, मंगोलिया, उज्बेकिस्तान, तुर्की और थाईलैंड आदि देशों में हिंदी शिक्षण की पुरानी परंपराएँ हैं। गुयाना, त्रिनिडाड, सूरीनाम, फिजी, मॉरीशस जैसे अनेक देशों में व्यापक संपर्क की भाषा के रूप में हिंदी का प्रयोग हो रहा है तो वहीं अमेरिका, चीन, जापान, दक्षिण कोरिया, यूरोप के कई देशों में व्यापारिक एवं कूटनीतिक कारणों से विदेशी भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण किया जा रहा है। दक्षेस देशों की बात की जाए तो यह भारत और उसके पड़ोसी देशों का एक संगठन है। सन् 1985 के बाद समूचे विश्व की भू-राजनीतिक परिस्थितियों में बदलाव उपस्थित होता है। अमेरिका एवं तत्कालीन सोवियत संघ के मध्य चल रहे शीतयुद्ध के वैचारिक तापमान में गिरावट दर्ज होती है। फलतः विश्व के पुनर्संगठन और पुनर्ध्रुवीकरण की प्रक्रिया आरंभ होती है। इसी दौर में भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी ने अपनी भविष्य दृष्टि का परिचय देते हुए दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन का गठन सन् 1985 में किया। इसे संक्षेप में 'सार्क (साउथ एशियन एसोसिएशन फॉर रीजनल कोऑपरेशन)' की संज्ञा से भी अभिहित किया जाता रहा है। इस संगठन में भारत, अफगानिस्तान, नेपाल, भूटान, बांग्लादेश, श्रीलंका, मालदीव तथा पाकिस्तान आदि आठ देश सम्मिलित हैं। ये सभी देश किसी-न-किसी रूप में हमेशा से भारत के बहुत ही समीप रहे हैं। यही कारण है कि हिंदी सभी देशों में प्रयुक्त हो रही है।

आज जबकि हिंदी पूरे विश्व में अपने पैर पसार चुकी है, तब उसके पड़ोसी देश भी इससे अलग नहीं हैं। दक्षेस के लगभग सभी देश परंपरागत और सांस्कृतिक रूप से भारत एवं हिंदी से जुड़े रहे हैं। ये सभी कभी-न-कभी वृहत्तर भारत के अंग रहे हैं। ये ऐतिहासिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा भाषिक स्तर पर अत्यधिक निकट हैं। इन देशों में प्रयुक्त

भाषाएँ एक ही परिवार एवं वर्ग की हैं। इसी कारण ये एकसूत्र में बँधे ही दिखाई देते हैं।

नेपाल भारत का प्रमुख अंग रहा है। नेपाली भाषा भी आर्य परिवार से संबंध रखती है। आज भी यह भारतीय संविधान की एक स्वीकृत भाषा है। वैसे तो नेपाल में काफी भाषाएँ प्रचलित हैं, लेकिन उन सभी में हिंदी का विशेष स्थान है। यहाँ भारत की ही भाँति सिद्ध, नाथ, संत और भक्त साहित्य की सभी धाराएँ समानांतर विद्यमान रही हैं। नेपाल में कपिलवस्तु, मधेश, दाँग, बर्दिया क्षेत्र में अवधी लगभग 10 लाख व्यक्तियों द्वारा बोली जाती है। यहाँ हिंदी को द्वितीय राजभाषा का दर्जा प्राप्त है। अवधी वहाँ शिक्षा के माध्यम की भाषा भी है। वर्तमान समय में हिंदी लेखन की प्रायः सभी विधाएँ तथा प्रवृत्तियाँ न्यूनाधिक मात्रा में नेपाल में प्राप्य हैं, जिससे यह सिद्ध होता है कि नेपाल एक हिंदी देश भी है। नेपाल की राजधानी काठमांडू में त्रिभुवन विश्वविद्यालय में हिंदी का अध्ययन-अध्यापन होता है। यहाँ की पत्रिका 'साहित्य लोक' में हिंदी से संबंधित आलेखों को भी विशेष स्थान मिलता है। नेपाल में हिंदी का व्यवहार मुख्यतः तीन रूपों में होता है। प्रथम तो तराई के लगभग 80-85 लाख लोगों की वह पहली भाषा है अर्थात भारत के उत्तर प्रदेश और बिहार की सीमा से लगे आबादी की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण नेपाल के इस तराई-क्षेत्र में हिंदी उसी रूप में प्रथम भाषा है जिस रूप में बिहार और उत्तर प्रदेश में। द्वितीयतः हिंदी वहाँ पहाड़ों एवं पहाड़ी नगरों में निर्वाह करने वाले उन बहुसंख्यक लोगों की द्वितीय और संपर्क भाषा है, जिनकी मातृभाषा नेपाली है। इस प्रकार उस देश की आबादी के लगभग 90 प्रतिशत लोगों की हिंदी प्रथम और द्वितीय एवं संपर्क भाषा है। सच तो यह है कि हिंदी के इस व्यापक प्रयोग ने ही उसे सर्वप्रथम 1950-60 के दशक और फिर बाद के दशकों में कुछ राजनीतिक पेचीदगी में जकड़ दिया और राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर नेपाली के साथ-साथ हिंदी को भी द्वितीय राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किए जाने की माँग जोर पकड़ने लगी। नेपाल-तराई-कांग्रेस तथा उसके प्रमुख नेता वेदानंद झा ने तो इसे ही अपनी पार्टी का मूल मुद्दा बनाया और हिंदी को संवैधानिक स्तर प्रदान करने का हर संभव प्रयास जारी रखा। कहने का तात्पर्य यह है कि नेपाल में हिंदी सदैव से मुख्य स्थान रखती आई है। भले ही संवैधानिक स्तर पर उसे स्थान न मिला हो, लेकिन सामाजिक और व्यावहारिक रूप में वह जन-मन पर राज कर रही है और यही कारण है कि नेपाल घूमने जाने वाले भारतीयों को कहीं भी भाषाई संकट का सामना नहीं करना पड़ता है। 'चल-चल रे काठमांडू/मिलेंगे वहीं शंभू' की हुँकार भरते हुए भारतीय नेपाल में स्वस्थ रूप से घूमते-फिरते देखे जा सकते हैं।

पड़ोस देशों में भाषिक स्तर पर पाकिस्तान की स्थिति भी अच्छी है। पाकिस्तान 1947 के पहले भारत का ही एक अंग था। विभाजन के बाद पाकिस्तान के रूप में नए देश का निर्माण होने पर मुख्य भाषा के रूप में उर्दू को स्थान मिला। यद्यपि यहाँ राजभाषा उर्दू ही है, जबकि आधिकारिक रूप से सभी कार्य अंग्रेजी में किए जाते हैं। कराँची और लाहौर विश्वविद्यालयों के साथ ही इस्लामाबाद में स्कूल ऑफ मॉडर्न लैंग्वेजेस में हिंदी सर्टिफिकेट कोर्स तक पढ़ाया जाता है। पाकिस्तान बनने के बाद उर्दू भले ही आधिकारिक तौर पर राजभाषा हो, परंतु वह अपने मूल स्वरूप में भारतीय भाषा है तथा अरबी-फारसी की तुलना में हिंदी के अत्यधिक निकट है। आज पाकिस्तान में उतने ही लोग हिंदी बोलने-जानने और समझने में सक्षम हैं जितने उर्दू के हैं। वास्तविकता यह है कि पाकिस्तान की लगभग 80 प्रतिशत जनसंख्या अर्थात 12 करोड़ से ज्यादा लोग हिंदी का कार्य व्यवहार करते हैं। यहाँ के विश्वविद्यालयों के साथ ही विद्यालयों में भी हिंदी का पठन-पाठन होता है। यहाँ तक कि पाकिस्तान की संघ लोक सेवा आयोग की परीक्षाओं में भी हिंदी वैकल्पिक रूप में उपलब्ध है। साहित्यिक स्तर पर भले ही स्थिति बहुत सुखद नहीं है, लेकिन व्यावहारिक रूप से हिंदी के विकास में यहाँ कोई बहुत अवरोध नहीं है।

इस क्रम में अगला नाम बांग्लादेश का आता है। बांग्लादेश ने 1971 में पाकिस्तान से अलग होकर स्वतंत्र देश के रूप में अपनी पहचान बनाई। यह देश तीन ओर से भारतीय सीमाओं से लगा हुआ है। चूँकि यह भी भारत का ही एक अंग रहा है, इसलिए इसकी भाषा और संस्कृति पर भारतीय प्रभाव देखा जा सकता है। यहाँ की राजभाषा तो बांग्ला है, किंतु उसी के समानांतर यहाँ उर्दू और हिंदी भी प्रयुक्त होती है। भारत के बाद हिंदी समझने वाला यह एक महत्वपूर्ण देश है। बांग्लादेश के निर्माण में भारत की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। यहाँ के महाकवि नजरूल इस्लाम का बांग्ला के माध्यम से हिंदी पर

गहरा प्रभाव पड़ा है। यहाँ के ढाका विश्वविद्यालय में छात्रों के लिए हिंदी का चार वर्षीय पाठ्यक्रम भी चलाया जाता है और शीघ्र ही यहाँ विद्यार्थियों के लिए ऑनर्स स्तर के अध्ययन की सुविधा के लिए एक पीठ की स्थापना करने की भी योजना है। प्रोफेसर एहसान और श्री तालुकदार यहाँ के हिंदी सेवियों में जाने जाते हैं। इसके साथ ही दाऊद हैदर, रफीद आजाद, महाकवि नजरूल इस्लाम आदि की रचनाओं का हिंदी से गहरा जुड़ाव दिखाई देता है। इन कवियों की कविताओं में भारतीय समाज और जीवन से निकटता का एहसास होता है।

श्रीलंका दक्षेस का प्रमुख और महत्वपूर्ण देश है। यहाँ हिंदी का प्रचार प्रमुख रूप से फिल्मों के द्वारा, विचार गोष्ठियों के द्वारा, भारतीय पत्र-पत्रिकाओं द्वारा हुआ है। यहाँ रेडियो पर भारतीय शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रम का प्रसारण नियमित रूप से होता है। हिंदी में प्रसारित तमाम चैनलों की पहुँच श्रीलंका में बराबर है। इसके अलावा श्रीलंकाई दूरदर्शन पर भी हिंदी कार्यक्रम एवं फिल्में प्रसारित होते हैं। श्रीलंका के परीक्षा विभाग द्वारा

वर्तमान के साथ ही भविष्य में भी हिंदी को वैश्विक स्तर पर पहचान बनाने में दक्षेस के देशों का अपना वैशिष्ट्य बना ही रहेगा, क्योंकि इन देशों के नागरिक यूरोप-अमेरिका में भी आपसी संवाद हिंदी में ही करते हैं। इन देशों में हिंदी जन-मन को जोड़ने की दृष्टि से सेतु का कार्य करती रही है। इस क्षेत्र में सरकारी और गैर-सरकारी दोनों ही स्तरों पर प्रयास किए जाने की आवश्यकता है। यदि सरकारी स्तर पर कुछ नवीन योजनाओं को क्रियान्वित किया जाए तो संभव है कि इन देशों में हिंदी की स्थिति और बेहतर हो सके। इसी प्रकार गैर-सरकारी रूप में वैयक्तिक प्रयासों द्वारा भी स्थिति में यथोचित बदलाव लाया जा सकता है।

संचालित 'उच्चतम पाठशाला प्रमाण पत्र' परीक्षा हेतु हिंदी भी वैकल्पिक विषय के रूप में उपलब्ध है। आज श्रीलंका के सुप्रसिद्ध विश्वविद्यालयों जैसे कोलंबो विश्वविद्यालय, केलाणिय विश्वविद्यालय, जयवर्धनेपुरा विश्वविद्यालय में हिंदी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति के शिक्षण प्रशिक्षण का अपेक्षित प्रबंध है। यहाँ के विश्वविद्यालयों में यह सुविधा है कि छात्र हिंदी में भी बी.ए. तथा एम.ए. जैसी शैक्षणिक उपाधियाँ हासिल कर सकते हैं। यहाँ के छात्र भारत में भी उच्च शिक्षा अर्जित करने हेतु आते हैं। भारत और श्रीलंका सरकार की ओर से दोनों देश की भाषाओं में शोधकार्य संपन्न करने हेतु शोधवृत्तियों की विधिवत व्यवस्था है। इस कारण भाषा की प्रयोजनपरकता को ध्यान में रखकर श्रीलंकाई हिंदी की ओर उन्मुख हो रहे हैं। भारत और श्रीलंका के बीच हिंदी संबंधों को मजबूत बनाने का कार्य कर रही है। केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा और श्रीलंका का केलाणिय विश्वविद्यालय 1982 से जुड़े हुए हैं। यह भविष्य के प्रति सुखद संकेत है।

भूटान में विद्यालयीय स्तर पर हिंदी शिक्षण की व्यवस्था है। यहाँ की राजभाषा जोंगखा है। इसके साथ ही यहाँ नेपाली और हिंदी का प्रयोग भी होता है। मालदीव में आज हिंदी की जो स्थिति है, वह हिंदी सिनेमा और गीतों के माध्यम से है। भले ही साहित्यिक दृष्टि से बात की जाए तो भारत के पड़ोसी देशों में स्थिति बहुत सुखद नहीं है। पाकिस्तान

का उर्दू साहित्य तो हिंदी में खूब अनूदित हुआ है, लेकिन वहाँ किसी लेखक ने देवनागरी लिपि में रचना की हो, इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। बांग्लादेश की स्थिति भी यही है। वहाँ के बांग्ला लेखकों की रचनाएँ हिंदी में छपती रही हैं। नेपाल में कई शताब्दियों से पहले से ही हिंदी का प्रयोग होता रहा है तथा वहाँ अनेक हस्तलिखित कृतियाँ मिलती हैं। नेपाल के हिंदी प्रोफेसर सूर्यनाथ गोप के अनुसार, नेपाल में हिन्दी ग्रंथों की संख्या एक हजार से अधिक है, परंतु अधिकांश अप्रकाशित हैं तथा उनकी कोई व्यवस्थित सूची भी उपलब्ध नहीं है।

वर्तमान के साथ ही भविष्य में भी हिंदी को वैश्विक स्तर पर पहचान बनाने में दक्षेस के देशों का अपना वैशिष्ट्य बना ही रहेगा, क्योंकि इन देशों के नागरिक यूरोप-अमेरिका में भी आपसी संवाद हिंदी में ही करते हैं। इन देशों में हिंदी जन-मन को जोड़ने की दृष्टि से सेतु का कार्य करती रही है। इस क्षेत्र में सरकारी और गैर-सरकारी दोनों ही स्तरों पर प्रयास किए जाने की आवश्यकता है। यदि सरकारी स्तर पर कुछ नवीन योजनाओं को क्रियान्वित किया जाए तो संभव है कि इन देशों में हिंदी की स्थिति और बेहतर हो सके। इसी प्रकार गैर-सरकारी रूप में वैयक्तिक प्रयासों द्वारा भी स्थिति में यथोचित बदलाव लाया जा सकता है। इससे बहुत फर्क नहीं पड़ना चाहिए कि इन देशों में हिंदी का साहित्य कैसा और किस मात्रा में लिखा जा रहा है। यह विकास का एक चरण हो सकता है, इसलिए अगर इनका विकास होता है तो यह स्थिति सुखद ही कही जाएगी। भाषा के व्यवहृत रूप में हिंदी निरंतर विकास की ओर अग्रसर है और अपेक्षा की जानी चाहिए कि यह विकास उत्तरोत्तर और बेहतर दिशा की तरफ ले जाएगा।

बस्तर (छत्तीसगढ़) का लोक पर्व- 'छेरका' या 'छेरछेरा'

भारत की जनसंख्या का कुछ भाग शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों से दूर वन, पहाड़ों, घाटियों, तराइयों तथा तटीय क्षेत्रों में विशिष्ट जीवन-शैली, रहन-सहन, संस्कृति को अपनाए हुए निवासरत है। बाह्य समाज इन्हें नेटिव, वनवासी, वन्य जनजाति, देशज, आदिम जनजाति, जनजाति, आदिवासी आदि नामों से पहचानता है, जबकि उन समुदायों का विशिष्ट नाम, निवास क्षेत्र, विशिष्ट संस्कृति है। राष्ट्र की स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय संविधान में इन समाजों के विकास की दृष्टि से एवं राष्ट्र की मुख्यधारा से जोड़ने के लिए विशेष संरक्षित एवं विकासीय प्रावधान किए गए। संविधान के अनुच्छेद 342 के तहत भारत सरकार द्वारा राज्यों के अनुसूचित जनजाति समूह की सूची जारी की गई है। इन सूचीबद्ध अनुसूचित जनजातियों के समग्र विकास हेतु राज्य सरकार द्वारा शिक्षा, स्वास्थ्य, आर्थिक तथा क्षेत्रीय विकास कार्यक्रमों का सृजन एवं क्रियान्वयन किया जा रहा है और ऐसे समय में बस्तर (छत्तीसगढ़) जैसे क्षेत्र व वहाँ निवासरत लोगों के बारे में जानना अपरिहार्य है।

डॉ. रूपेन्द्र कवि

जन्म : 17 फरवरी, 1979 बस्तर, छत्तीसगढ़।

शिक्षा : एम.ए., एम.फिल. (हिंदी), पीएच.डी.

संप्रति : अनुसंधान सहायक।

लेखन एवं प्रकाशन : दो मूल तथा दो अनूदित पुस्तकें प्रकाशित, साथ ही कई शोध पत्र, कहानी, कविताएँ प्रकाशित।

संपर्क : मोबाइल– 9406200426

ईमेल– drkavianthro@gmail.com

बस्तर की जनजातियों के लोक जीवन में लोक कथा, लोक कहावत, पहेली, नृत्य-संगीत का विशिष्ट स्थान है। परजा सदस्य जीवन की क्रियाओं को सरल, सुगम एवं रुचिपूर्ण बनाने के लिए तथा मनोरंजन के उद्देश्य से लोक कथा, लोक कहावत, पहेली, गीत-संगीत, नृत्य जीवन के सभी महत्वपूर्ण अवसरों से पारंपरिक रूप से जुड़ा है। जनजातियों के लोक परंपराओं में लोक पर्व का विशेष महत्व है।

'छेरछेरा' बस्तर के जनजातियों-निवासियों में विशिष्ट महत्वपूर्ण लोक पर्व है। 'छेरछेरा' पर्व 'पुसपुनी' (पौष पूर्णिमा) के दिन मनाया जाता है। यह अन्न दान का महापर्व है। बस्तर के निवासी नई फसल के खेत-खलिहान से घर आ जाने के पश्चात बड़े धूमधाम से मनाते हैं। यद्यपि आस-पास के गाँवों में यह पर्व दस दिन पूर्व से ही प्रारंभ हो जाता है, परंतु 'छेरछेरा' पर्व 'पुसपुनी' (पौष पूर्णिमा) के दिन संपन्न होता है।

यह उत्सव ग्रामीण भारत के कृषि प्रधान संस्कृति दानशील परंपरा का वाहक है। उत्सवधर्मी 'छेरछेरा' बस्तर का एक ऐसा लोक पर्व है जिसके माध्यम से सामाजिक-सांस्कृतिक समरसता को सुदृढ़ बनाए रखने के लिए पीढ़ियों से मनाया जा रहा है।

गीत व नाचा

बस्तर के जनजातियों में जीवन संस्कार, आर्थिक कार्य, धार्मिक जीवन से संबंधित गीत प्रचलित हैं, जिसमें से मरड़ बाँधनी गीत, तेल चेघानी गीत, कोटनी गीत, सायलोड़ी गीत, परब गीत, डंडारी गीत, छेरछेरा गीत आदि गीत गाए जाते हैं।

बस्तर की जनजातियों में डंडारी नृत्य, छेरछेरा नृत्य, विवाह नृत्य आदि अलग-अलग अवसरों पर मनोरंजन तथा परंपरा के रूप में किए जाते हैं, जिनमें से छेरछेरा नृत्य का विवरण निम्नांकित है—

छेरका नाचा

छेरछेरा नृत्य, छेरछेरा त्योहार में किया जाता है। इसमें बस्तर के जनजातीय सदस्य या

ग्रामीण सदस्य समूह में गाँव के घर-घर जाकर 'छेरछेरा' गीत व नृत्य करते हुए अनाज तथा रुपये माँगते हैं। एक, दो या अधिक सदस्य चेहरे पर रंगों को पोते हुए होते हैं या मुखौटा पहने होते हैं व कमर में घुँघरू बँधा रहता है,

कुछ पुरुष सदस्य महिला का वेश भी बनाए होते हैं, जिसे 'नकटा' संबोधित किया जाता है। पीछे खड़े सदस्य छेरका गीत गाने से 'नकटा' (वह नर्तक पात्र) नाचता है। इस दौरान लड़के जो गीत गाते हैं, निम्नानुसार है—

1. बीर लीटी-बीर लीटी, पांडकी मारा लीटी,
   डोकरा-डोकरी झगड़ा होयलाय, चापी देला जूठी।
   रे नकटा छेर छेर...
2. आवन बारू, धौड़ा दारू, गोटकी आंतरा बारूँ,
   पारकोंटीया दिया बारू, टहंग-लटंग मारू।

बीच-बीच में पीछे खड़े सदस्य 'छेर छेर रे नकटा छेर छेर' बोलते हैं।

पाती (लड़कियों का छेरका नाचा)

लड़कों की तरह लड़कियाँ भी समूह में घर-घर जाकर छेरछेरा गीत व नृत्य करते हुए अनाज व रुपये माँगती हैं जिसे 'पाती' के नाम से जाना जाता है।

इस दौरान लड़कियाँ जो गीत गाती हैं, निम्नानुसार है—

1. तारा ते तारा, ईस्वर घर तारा,
   देसे दिया नोयले नाई, जीबू आमर पारा।
2. सान सरगी-बड़ सरगी, खेंदा जोड़ा-जोड़ी,
   धनसरा र टोकी मन, बांधा जोड़ा-जोड़ी।

बीच-बीच में पीछे खड़े सदस्य दूसरी पंक्ति के आखिरी वाक्य को दोहराते हैं—

उदाहरण के लिए— छेर-छेरा गीत...
तारा ते तारा, ईस्वर घर तारा,
देसे दिया नोयले नाई, जीबू आमर पारा।

गाने के पश्चात पीछे खड़े सदस्य 'री जीबू आमर पारा...' गाते हैं। अंत में 'छेर छेर' बोलते हैं, व अन्न दान माँगते हैं।

नकटा

किसी सदस्य के चेहरे पर रंगों को पोतकर तैयार किया जाता है या मुखौटा पहनाया जाता है, व कमर में घुँघरू बाँधा जाता है।

कुछ पुरुष सदस्य महिला का वेश भी बनाए होते हैं, जिसे 'नकटा' संबोधित किया जाता है। यदि किसी महिला सदस्य को इस तरह तैयार किया जाता है, तब उसे 'नकटी' संबोधित किया जाता है। 'नकटा-नकटी' छेरका नाचा के प्रमुख पात्र होते हैं।

छेरका नाचा में उपयोग में आने वाली वस्तुएँ

घुँघरू

धातु से निर्मित घुँघरू 'नकटा' के कमर में बाँधा जाता है, जिससे नाचते समय झन्न-झन्न की आवाज निकलती है।

मुखौटा

'नकटा' के मुँह में पहनाया जाता है, अलग-अलग वस्तु से निर्मित अलग-अलग भाव-भंगिमा वाले मुखौटे का उपयोग किया जाता है।

रंग

रंग 'नकटा' के चेहरे में लगाया जाता है। इसके लिए प्रायः सफेद रंग की छुई का उपयोग किया जाता है। साथ-ही-साथ लाल, हरा, पीला, काला आदि रंगों का भी उपयोग किया जाता है।

टोकरी

छेरछेरा गीत व नृत्य करते हुए अनाज व रुपये माँगते हैं। प्रायः अन्न दान में धान दिया जाता है, जिसे बाँस से निर्मित 'टुकना' (टोकरी) में संग्रहीत किया जाता है। साथ ही थाली, झोला, बोरा आदि का भी उपयोग किया जाता है।

साड़ी

छेरछेरा नृत्य करते समय कुछ पुरुष सदस्य महिला का वेश भी बनाए होते हैं, इस समय 'साड़ी' का उपयोग किया जाता है।

महिला वेश धरने हेतु सामग्री

छेरछेरा नृत्य करते समय कुछ पुरुष सदस्य महिला का वेश भी बनाए होते हैं, इस समय 'साड़ी' के साथ ही अन्य वस्त्र आभूषणों का उपयोग किया जाता है, जैसे—पेटीकोट, ब्लाउज, नकली बाल, चूड़ी, माला, टिकली, बिंदी आदि।

> आदिवासी आज भी अपने लोक परंपराओं के वाहक हैं। लोक जीवन को सुदृढ़ता के साथ जी रहे हैं। वैश्वीकरण के दौर में आधुनिकता के प्रभाव से ये भी वंचित नहीं रह गए हैं। कमोबेश खान-पान हो या फिर गीत-संगीत सभी में आधुनिक बाजार में उपलब्ध साधन-संसाधन तथा मीडिया व सोशल मीडिया का प्रभाव सहज देखा जा सकता है।

वाद्य यंत्र

छेरछेरा गीत व नृत्य करते समय ढोलक, मंजीरा, पोंगरी, मोहरी तथा

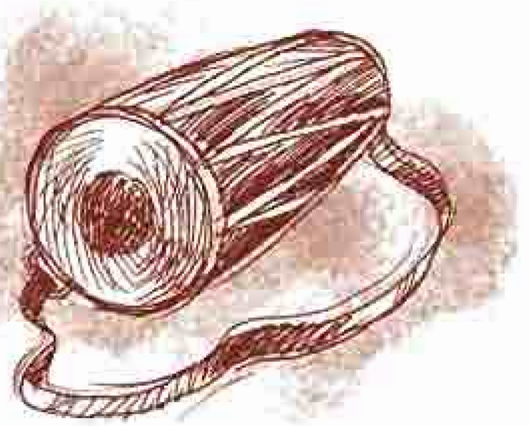

अधिकांशतः पीपा (टीने का डब्बा) वाद्य यंत्र के रूप में उपयोग किया जाता है।

छेरका भोज

छेरछेरा गीत व नृत्य करते समय प्रत्येक घर से अनाज व रुपये माँगते हैं जो कि आस-पास के गाँवों में 10 दिन पूर्व से ही प्रारंभ हो जाता है (गीत व नृत्य करते हुए अन्न दान माँगने-देने की प्रक्रिया शुरू हो जाती है) परंतु 'छेरछेरा' पर्व 'पुसपुनी' (पौष पूर्णिमा) के दिन संपन्न होता है। पौष पूर्णिमा के दिन या उसके पश्चात तय किसी दिन वनभोज (छेरछेरा भोज) का आयोजन किया जाता है, जिसमें छेरछेरा गीत व नृत्य कर पर्व मनाते हुए अन्न दान माँगने वाले समस्त सदस्य सम्मिलित होते हैं। अन्न दान माँगने से प्राप्त धान, चावल, पैसे आदि से भोज के लिए सामग्री जुटाई जाती है। सभी मिल-जुलकर भात, साग, मांस, मदिरा की व्यवस्था करते हैं। 'छेर छेर रे नकटा छेर छेर' बोलकर 'नकटा' को 'लुठी' (सुलगती हुई लकड़ी) से जलाने का स्वाँग भी इसका महत्वपूर्ण हिस्सा है। इस तरह छेरछेरा पर्व का समापन होता है।

नृत्य संगीत में परिवर्तन

बस्तर की जनजातियों में जीवन संस्कार, आर्थिक कार्य, धार्मिक कार्य एवं मनोरंजन हेतु लोक गीत-संगीत का प्रचलन धीरे-धीरे कम हो रहा

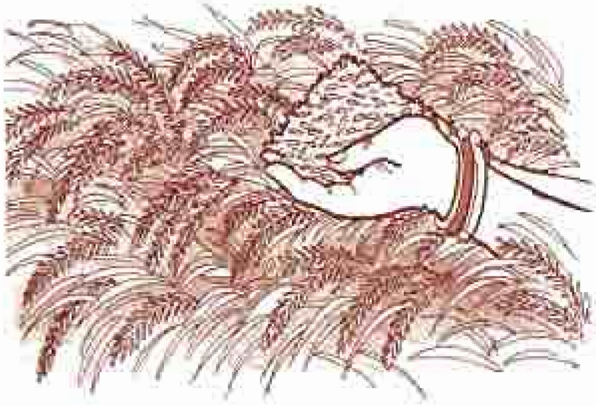

है। इसके स्थान पर फिल्मी गीत-संगीत, साउंड सिस्टम, टेलीविजन, सीडी प्लेयर का प्रचलन बढ़ रहा है। युवा वर्ग की रुचि लोक गीत-संगीत पर कम हो रही है।

बस्तर (छत्तीसगढ़) जैसे सुदूर वनांचल में जीवनयापन करने वाले आदिवासी आज भी अपनी लोक परंपराओं के वाहक हैं। लोक जीवन को सुदृढ़ता के साथ जी रहे हैं। वैश्वीकरण के दौर में आधुनिकता के

प्रभाव से ये भी वंचित नहीं रह गए हैं। कमोबेश खान-पान हो या फिर गीत-संगीत सभी में आधुनिक बाजार में उपलब्ध साधन-संसाधन तथा मीडिया व सोशल मीडिया का प्रभाव सहज देखा जा सकता है। आज आवश्यकता है बस्तर व अन्य ऐसे क्षेत्र में 'छेरछेरा' जैसे लोक पर्व के महत्व को रेखांकित करते हुए संरक्षण प्रदान करने की, ताकि भविष्य में बस्तर व अन्य ऐसे क्षेत्र के आदिम-ग्राम्य जन-जीवन व लोक रंग आने वाले पीढ़ियों में भी उपलब्ध रहकर जीवन में मिठास घोलता रहे।

पद्मश्री डॉ. यशोधर मठपाल :

जब तक हमारी संस्कृति जिंदा रहेगी, मानवीय मूल्य जिंदा रहेंगे

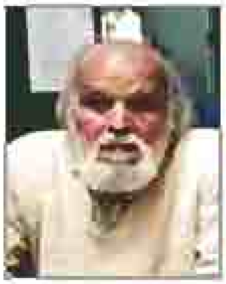

लोक कलाविद एवं पुरातत्ववेत्ता पद्मश्री डॉ. यशोधर मठपाल जी ने लोक संस्कृति संग्रहालय, भीमताल की स्थापना भीमताल में सन् 1983 में की। यह एक व्यक्तिगत संग्रहालय है। यह संभवतः एकमात्र संग्रहालय है जहाँ इसका संस्थापक ही अभी तक अकेले निदेशक, शोधक, प्रवर्तक, आर्थिक संसाधन प्रबंधक, चित्रकार, मूर्तिकार और सफाईकर्मी भी है। लोक संस्कृति के संरक्षण, वाचिक और लिखित परंपराओं के प्रलेखन, ओझल होते कला-शिल्प के प्रशिक्षण तथा स्थानीय कलाधर्मियों को प्रोत्साहन देने के लिए यह संग्रहालय स्थापित किया है। संग्रहालय कुमाऊँ शिवालिक पहाड़ियों की गोद में, नैनीताल जनपद के भीमताल विकासखंड की सुरम्य घाटी में 1400 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है जो लगभग तीन किलोमीटर उत्तर से भीमताल की झील व बस्ती को निहारता है। संग्रहालय का सीतायतन नामक परिसर दिल्ली से 334 कि.मी., पंतनगर हवाई पट्टी से 59 कि.मी., काठगोदाम रेलवे स्टेशन से 24 कि.मी. और जनपद नैनीताल से मात्र 18 कि.मी. की दूरी पर है। डॉ. मठपाल जी के अनुसार ऐपण कला का आदिम व प्राचीनतम रूप पाषाणकालीन गुफा चित्रों में प्राप्त नानाविध आलेखनों में देखा जा सकता है। आपने गुफा चित्रों पर बहुत ही अद्भुत काम किया है। अन्वेषक प्रवृत्ति के होने के कारण मठपाल जी ने प्राचीन ऐतिहासिक तथ्यों का विश्लेषण बहुत ही गहराई से प्रस्तुत किया है। स्व. नाथूराम उप्रेती जी के बाद कुमाऊँनी लोक कला को पहचान दिलाने में मठपाल जी का अप्रतिम योगदान है। प्रस्तुत है लोक चित्रों के विषय में डॉ. करुणा पांडे से हुई उनकी बातचीत—

आपको भित्ति चित्र और गुफा चित्र जैसी विधाओं में शोध करने की प्रेरणा कहाँ से मिली, मतलब इस क्षेत्र में आपने काम क्यों किया?

ईश्वर सबसे बड़ा कलाकार है और उसकी कृति-प्रकृति सबसे बड़ी प्रेरणास्रोत। प्राकृतिक सुषमा पाषाण हृदय को भी भावुक, कवि, लेखक और चित्रकार बना देती है। मनोरम प्राकृतिक स्थल जन्मजात तीर्थ होते हैं। वहाँ पहुँचकर मानव मन की कालिमा धुल जाती है और परम तत्व का संस्पर्श-सुख मिलने लगता है। साधना हेतु प्रकृति की गोद सबसे निर्विघ्न स्थल है। इस धरा पर हिमालय प्राकृतिक सुषमा का आगार है। इसने अनादि काल से शास्त्रों-लोगों को आकर्षित किया है। मैं तो बचपन से ही इस प्राकृतिक सुषमा के करीब रहा और इसके मोह में बँधता चला गया। कब मेरा मन इसमें रम गया, मुझे पता ही नहीं चला। पर इतना ही मैंने जाना कि मेरा जन्म इन अनसुलझी प्राकृतिक सौंदर्य की गुत्थियों को सुलझाने के लिए हुआ है और मैं इन्हीं में रम गया।

डॉ. करुणा पांडे

शिक्षा : एम.ए., एल.एल.बी., पीएच.डी.।

संप्रति : सेवानिवृत्त शिक्षिका।

संपादन एवं कृतियाँ : अभिनव संवाद, रामचरितमानस और रघुवंश, यथार्थ की चादर जैसी कई कृतियाँ प्रकाशित, बाल साहित्य लेखन।

सम्मान : साहित्य गौरव सम्मान

संपर्क : मोबाइल— 9897801069
ईमेल— karunapande16@gmail.com

आपने गुफा चित्र में बहुत काम किया है, कृपया आप बताएँ कि गुफा चित्र और भित्ति चित्र में क्या अंतर है?

गुफा चित्र प्राचीनकाल में आदि मानव के द्वारा आड़ी-तिरछी रेखाओं द्वारा बनाया गया वह चित्रण है, जो वह रोजमर्रा अपने आस-पास देखता और महसूस करता है। इसीलिए गुफा चित्रों में या तो जानवर हैं, या तीर-कमान लेकर लड़ने को तैयार मानव आकृतियाँ हैं। ये चित्र मनोभावों को व्यक्त करते हैं। गुफा चित्र खुद भी बन जाते हैं। पत्थरों पर खुद से प्रकृति द्वारा उकेरी आकृतियाँ मूल रूप से गुफा चित्र के अंतर्गत आती हैं। जबकि भित्ति चित्र अर्वाचीन काल के मानव निर्मित चित्र हैं, जैसे—अजंता की गुफाओं में बने चित्र। भित्ति चित्रों को प्लास्टर ऑफ पेरिस से और सीमेंट से बनाया जाता है। इनको बनाने से पहले इनकी रूपरेखा बनाते हैं और चित्रों व रंगों के विषय में अध्ययन किया जाता है।

कुमाऊँ के ऐपण में भी भित्ति लेखन होता है, वे गुफा चित्र के समकक्ष होते हैं या अलग?

किसी भी अंचल को देखेंगे तो आपको काफी समानताएँ मिलेंगी। क्योंकि यह जो मानव मन है, वह अलग-अलग देश काल, या क्षेत्र नहीं देखता है। मानवीय विज्ञान भावना पर आधारित होता है और यह सब जगह एक-सा होता है। इसलिए क्षेत्र विशेष से थोड़ा अंतर आता है, पर मूल भावना एक ही रहती है। हमारे ऐपण उसी क्रम में ही आज इस रूप में यात्रा कर सके हैं। भित्ति पट्ट, धरातलीय लेखन, भद्र ये सब अलग-अलग रूपों में हैं जो धीरे-धीरे कल्पना और कलात्मकता के सहारे विकसित होते गए हैं।

ऐपण में भद्रों की संख्या अलग-अलग होती है, जैसे–24 बिंदु वाला भद्र, 19 बिंदु वाला भद्र, 12 बिंदु वाला भद्र आदि, तो यह अलग-अलग संख्या क्यों है, क्या कोई तांत्रिक अभिप्राय है, इनका क्या औचित्य है?

ये भद्र जितनी संख्या में हैं उसी हिसाब से बनेगा। संख्या में हम कुछ बदलाव नहीं कर सकते, जैसे—108 का मतलब 108 ही है, न कम न ज्यादा। उसके पीछे यह मान्यता है कि 100 तो गिनते ही हैं, फिर आठ मूलचूक के लिए लगाते हैं। भद्रों को ज्यामितीय खानों में बनाते हैं, इसका कोई तांत्रिक अर्थ है या नहीं, इस पर तंत्र का क्या प्रभाव है, कहा नहीं जा सकता। क्योंकि नाथ संप्रदाय हमसे जुड़ा रहा। गोरखनाथ से लेकर आगे के बहुत-से नाथों के साथ हमारा संबंध रहा है, उनका वर्चस्व रहा। हमारे सभी तीर्थ नाथ हो गए, जैसे—केदारनाथ, बद्रीनाथ, तुंगनाथ आदि। तो तांत्रिक परंपरा रही है। देवी पार्वती के अनेक रूप हैं, इसलिए कहीं-न-कहीं शाक्त प्रभाव भी है, जैसे—सर्वतोभद्र जो शिव की पूजा के लिए होता है, उसे कुछ निश्चित बिंदुओं के साथ पूरा करना होता है। इन बिंदुओं के विषय पर शोध अभी बाकी है। पर आज लोग शोध करने के लिए तैयार ही नहीं हैं। हर कोई अर्थ के पीछे भाग रहा है। इनको जानने के लिए गहन अध्ययन और चिंतन की जरूरत होती है। पर इतना धैर्य आजकल किसके पास है। यहाँ थारू, बोक्सा, जौनसारी, राजी और भोटिया समाजों की भौतिक संपदा के नमूने और इनके परिवेश के त्रिआयामी मॉडल हैं।

आज हमारी लोक कला को जीवन में वह स्थान नहीं प्राप्त है, जो पहले था, इनको कैसे संजोकर रखा जाए और इनका भविष्य क्या है?

पहाड़ हो या कोई दूसरा अंचल, हर जगह चार पीढ़ी में देखते-देखते बहुत अंतर आ गया है। जीते जी मैंने चार पीढ़ियों का अंतर देख लिया है। पहाड़ के ज्यादातर लोग महानगरों में बस गए हैं। अपना परिवेश छोड़ दिया है। वहाँ न तो वैसा धरातल है और न ही भाव है। मिट्टी की जगह अब फर्श हो गए हैं, स्टीकर आ गए हैं। परिवेश के अनुसार स्टीकर ज्यादा सुविधाजनक हो गए हैं। पहले त्योहार होते थे तो सब बच्चे घर आते थे, सबके साथ मिलकर काम बाँटकर निभ जाता था। अब समयाभाव है, रंगों और सामग्री में परिवर्तन हुआ है। डिजाइनों का इंद्रजाल बदल रहा है। परंपरागत डिजाइनों में मिलावट हो गई है। लोग ज्ञान की कमी के कारण ऐपण बना रहे हैं, पर उनके मूल भाव बदल गए हैं, उनको पता ही नहीं है सरस्वती चौकी और लक्ष्मी चौकी में मूल अंतर क्या है। ऐपण के मूल तत्व को लोग भूलते जा रहे हैं। पहले इन सब तत्वों को माँ बेटी को सिखाती थी। पहाड़ में ऐपण का ज्ञान जरूरी होता था। बुजुर्गों की अहमियत कम होती जा रही है। दादी-नानी की परंपराएँ खत्म हो रही हैं, मान्यताएँ बदल गई हैं। संबोधन बदल गए, सारे रिश्ते अंकल में सिमट गए हैं। अंकल अब फैमिली हो गए हैं। बुजुर्ग घर में एक पुराने सामान की तरह हो गए हैं।

पहले एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक ज्ञान कहानी, लोरी, कविता और किस्सों से आता था, अब यह खत्म हो गया है। माध्यम बदल गया है। जबकि मूल रूप से हमारा धर्म उत्सवधर्मी रहा है, हम हँसते हैं, छाती नहीं पीटते हैं। जब तक हमारे यहाँ यह मान्यता रहेगी, लोक गीत जीवित रहेंगे। निराश होने जैसी कोई बात नहीं है, वक्त बदलेगा। कलाएँ तो हैं, पर रूप बदल गया है। अंतरजातीय विवाह के कारण संस्कृति बदल जाती है और परंपराएँ सिमट जाती हैं। आज पूरे विश्व में मोनो कल्चर हो गया है। अंतरजातीय विवाह को समाज और सरकार प्रोत्साहन दे रहे हैं, जिससे कल्चर खत्म होते जा रहे हैं। वैश्वीकरण होने से भी यह एक फैशन बन गया है।

लोक संस्कृति संग्रहालय की स्थापना का मुख्य उद्देश्य क्या है?

संस्कृति के उषाकाल से सद्यः अतीत तक की सारी सांस्कृतिक थाती को अक्षुण्ण रखने हेतु यह संग्रहालय स्थापित किया गया है। सुदूर अतीत जिसे भूगर्भशास्त्रीय शब्दावली में 'मायोसीन' और 'प्लायोसीन' कल्प कहा जाता है, जबकि हमारा हिमालय भी उद्भूत नहीं हुआ था, तब से आज तक मानवीय संस्कृति का समग्र लेखा-जोखा रखने हेतु यह संग्रहालय परिकल्पित किया गया ताकि हमारी धरा के इस एकांत कोने का कुछ अवदान मानवमात्र को मिले, इसकी जानकारी हो सके। संग्रहालय में प्रदर्श वस्तुओं और शोध कार्यों को प्रागैतिहासिक आद्येतिहासिक और ऐतिहासिक काल खंडों, जिसमें अंततः सद्य अतीत भी आ जाता है, से जोड़ा जा सकता है। यहाँ प्राचीनतम वस्तुओं में टेथीज समुद्र के 15 करोड़ वर्ष प्राचीन जीवाश्म हैं। इसके बाद वे सात सौ पाषाण उपकरण हैं जिनको पाँच लाख वर्ष पूर्व से चार हजार वर्ष पूर्व तक बनाया गया था। तीसरी प्राचीन वस्तुएँ पाषाणकालीन गुफाचित्रों की कलात्मक अनुकृतियाँ हैं। ऐतिहासिक कालों के प्रतिमान सैंधव सभ्यता के शिल्पों की प्रतिकृतियाँ, ईंटें, मृद्भांड, आठ पाषाण वीर स्तंभ, तथा दो दर्जन से अधिक कृषि उपकरण, पांडुलिपियाँ, बहुमूल्य पुस्तकें और चित्र, बाँस, निगांल, लकड़ी, पत्थर, लोहा, तांबें और काँसे के बरतन, वाद्य यंत्र, लोक-देव प्रतिमाएँ, विवाह अलंकरण और सिक्के संग्रहालय में विद्यमान हैं।

वास्तव में आपने बहुत बड़ा आदर्श रखा है। आप आज की पीढ़ी को क्या संदेश देना चाहते हैं?

आज की पीढ़ी की सोच हमसे ज्यादा आगे बढ़ चुकी है, आज विज्ञान ने नए-नए प्रतिमान खड़े कर दिए हैं। समाज में जिंदगी जीने के मानक बदल गए हैं। महानगरों की सभ्यता छोटे शहरों तक अपने पैर पसार चुकी है। पर इतना कहना चाहता हूँ कि जब तक हमारी संस्कृति जिंदा रहेगी, मानवीय मूल्य जिंदा रहेंगे और हमारे गाँव रहेंगे, आने वाली पीढ़ी सुरक्षित और जीवित रहेंगी।

क्लाउड कंप्यूटिंग
एक उभरता हुआ करिअर

कंप्यूटर से लैपटॉप और अब मोबाइल तक में इंटरनेट के विविध प्रकार के प्रयोगों ने मानो एक नई क्रांति-सी ला दी है। अगर विश्व की कंप्यूटर क्षेत्र से संबद्ध जानी-मानी आईबीएम कंपनी द्वारा जारी आँकड़ों की बात करें तो पता चलता है कि दुनिया भर में विकसित किए जाने वाले 85 प्रतिशत से अधिक कंप्यूटर/मोबाइल एप्लिकेशंस क्लाउड कंप्यूटिंग पर आधारित हैं। इसी प्रकार नास्डेक (National Association of Securities Dealers Automated Quotations) के अध्ययनों में बताया गया है कि इस वर्ष के अंत तक 40 मिलियन डॉलर से अधिक निवेश सिर्फ क्लाउड कंप्यूटिंग टेक्नोलॉजी पर किया जाना है।

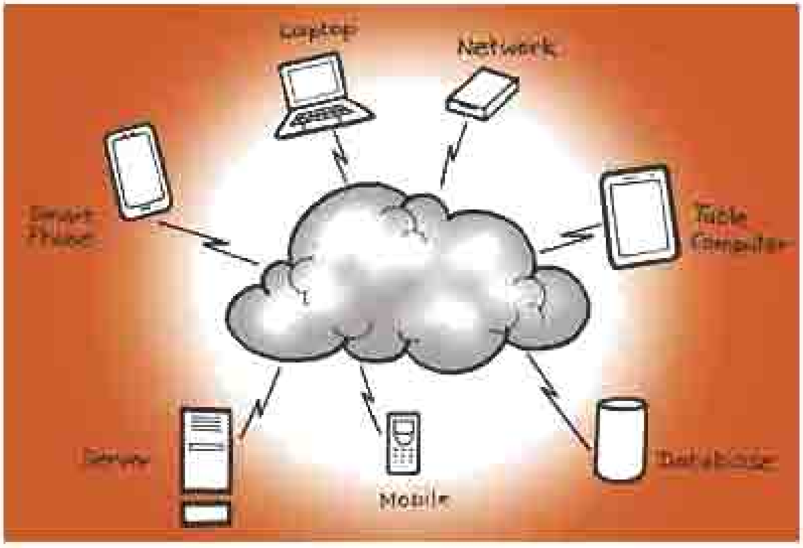

यह एक वास्तविकता है कि रोजमर्रा के जीवन से लेकर ऑफिस तक के कार्यकलापों में हम इंटरनेट पर पूरी तरह से आश्रित हो गए हैं। कंप्यूटर के बढ़ते इस्तेमाल और डिजिटाइजेशन की दिशा में बढ़ने के कारण विविध प्रकार के डाटा का भी बृहद् पैमाने पर सृजन हो रहा है। वैश्विक तौर पर ये डाटा ई-मेल, टेक्स्ट या ऑडियो-विजुअल फॉर्मेट में अत्यंत तेज गति से सृजित हो रहे हैं। इस विशाल डाटा का संग्रहण और रखरखाव इतना आसान नहीं है। किसी एक व्यक्ति के लिए ही नहीं, बल्कि कंपनियों तक के लिए यह बहुत ही जटिल और खर्चीला मामला हो जाता है। इसी समस्या का समाधान ढूँढने के प्रयास में क्लाउड कंप्यूटिंग की एक नई विधा अस्तित्व में आई है। बुनियादी तौर पर यह स्टेट ऑफ द आर्ट या अत्यंत उन्नत तकनीक है। मोटे तौर पर कहा जाए तो क्लाउड कंप्यूटिंग बड़े पैमाने पर वर्चुअल स्टोरेज की सुविधा प्रदान करती है, जिसे दुनिया के किसी भी कोने से एक्सेस किया जा सकता है।

इस व्यवसाय में आने वाले युवाओं के लिए आवश्यक है कि उनमें किसी भी तरह की समस्या का समाधान ढूँढने का जुनून हो। टीम के अन्य सदस्यों के साथ वे न सिर्फ सम्मानजनक बर्ताव करें, बल्कि उनकी संप्रेषण कौशल भी अच्छा होना चाहिए। परियोजना प्रबंधन की क्षमता तथा हमेशा लीक से हटकर, कुछ नया सोचने और कर दिखाने का जज्बा भी इस तरह के करिअर में काफी मायने रखता है।

क्लाउड कंप्यूटिंग का प्रशिक्षण लेने के लिए सूचना तकनीक (आईटी) या कंप्यूटर साइंस का बैकग्राउंड होना आवश्यक है, ताकि प्रत्याशी के पास कंप्यूटर और कंप्यूटर

डॉ. दीपक कोहली

जन्म : 17 जून, 1969, पिथौरागढ़ (उत्तराखंड)।

शिक्षा : पीएच.डी.।

संप्रति : उत्तर प्रदेश सचिवालय, लखनऊ में उपसचिव।

लेखन व प्रकाशन : विभिन्न प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में लगभग 1000 से अधिक वैज्ञानिक लेख/शोध पत्र प्रकाशित हो चुके हैं। आकाशवाणी लखनऊ से प्रसारित विभिन्न वार्ताएँ प्रसारित।

सम्मान : डॉ. गोरखनाथ विज्ञान पुरस्कार, सचिवालय दर्पण निष्ठा सम्मान, साहित्य गौरव पुरस्कार, विज्ञान साहित्य रत्न पुरस्कार।

संपर्क : मोबाइल— 9454410037

ईमेल— deepakkohli64@yahoo.in

प्रोग्रामिंग के बारे में प्रारंभिक जानकारी हो। इस क्षेत्र में काम का अनुभव है तो फिर सोने पर सुहागा वाली बात होगी। ऐसी पृष्ठभूमि होने से सीखने में काफी आसानी हो जाती है। इस क्षेत्र में करिअर बनाने के लिए पायथन और जावा कंप्यूटर लैंग्वेज की काफी उपयोगिता है।

देश-विदेश में बड़ी संख्या में निजी संस्थानों द्वारा क्लाउड कंप्यूटिंग पर आधारित कम अवधि और दीर्घ अवधि के प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों का आयोजन किया जाता है। इनमें माइक्रोसॉफ्ट द्वारा संचालित 'माइक्रोसॉफ्ट क्लाउड प्लेटफॉर्म एंड इन्फ्रास्ट्रक्चर', 'सिस्को सर्टिफाइड नेटवर्क एसोसिएट क्लाउड', 'गूगल सर्टिफाइड प्रोफेशनल आर्किटेक्ट' आदि का खासतौर पर जिक्र किया जा सकता है।

देश में क्लाउड सर्विस प्रदान करने वाली कंपनियों की कमी नहीं है। इनमें कई प्रकार की नौकरियों के विकल्प मिल सकते हैं। क्लाउड कंप्यूटिंग की विधा में माहिर युवाओं को विविधतापूर्ण रोजगार के अवसर प्राप्त हो सकते हैं। इनमें क्लाउड कंप्यूटिंग इंजीनियर, क्लाउड आर्किटेक्ट, क्लाउड सपोर्ट इंजीनियर, क्लाउड सॉल्यूशन इंजीनियर, क्लाउड एडमिनिस्ट्रेटर, क्लाउड मैनेजमेंट प्रोफेशनल, आईटी सिस्टम्स एंड यूजर्स सपोर्ट, एप्लिकेशन डेवलपमेंट, बिजनेस एनालिसिस, नेटवर्क, सिक्योरिटी एंड वेब डेवलपमेंट आदि का जिक्र प्रमुख रूप से किया जा सकता है।

आईबीएम और आईआईटी, बेंगलुरु द्वारा भी ऐसे कुछ पाठ्यक्रम शुरू किए गए हैं। कुछ निजी विश्वविद्यालयों द्वारा मास्टर डिग्री स्तर के पाठ्यक्रम भी आयोजित किए जा रहे हैं। यही नहीं, इस क्षेत्र के विशेषज्ञों द्वारा प्रशिक्षण कार्यशाला भी आयोजित की जाती हैं। इनकी फीस देकर ऐसी वर्कशॉप का भी लाभ उठाया जा सकता है। इस तरह की सूचनाएँ और जानकारियाँ आमतौर पर इंटरनेट और संबंधित वेबसाइट के माध्यम से मिल सकती हैं। यहाँ यह उल्लेख करना भी प्रासंगिक होगा कि अमूमन इस क्षेत्र की कंपनियाँ अपने कर्मचारियों को प्रशिक्षण के लिए भी अपने खर्च पर भेजती हैं।

देश में क्लाउड सर्विस प्रदान करने वाली कंपनियों की कमी नहीं है। इनमें कई प्रकार की नौकरियों के विकल्प मिल सकते हैं। क्लाउड कंप्यूटिंग की विधा में माहिर युवाओं को विविधतापूर्ण रोजगार के अवसर प्राप्त हो सकते हैं। इनमें क्लाउड कंप्यूटिंग इंजीनियर, क्लाउड आर्किटेक्ट, क्लाउड सपोर्ट इंजीनियर, क्लाउड सॉल्यूशन इंजीनियर, क्लाउड एडमिनिस्ट्रेटर, क्लाउड मैनेजमेंट प्रोफेशनल, आईटी सिस्टम्स एंड यूजर्स सपोर्ट, एप्लिकेशन डेवलपमेंट, बिजनेस एनालिसिस,

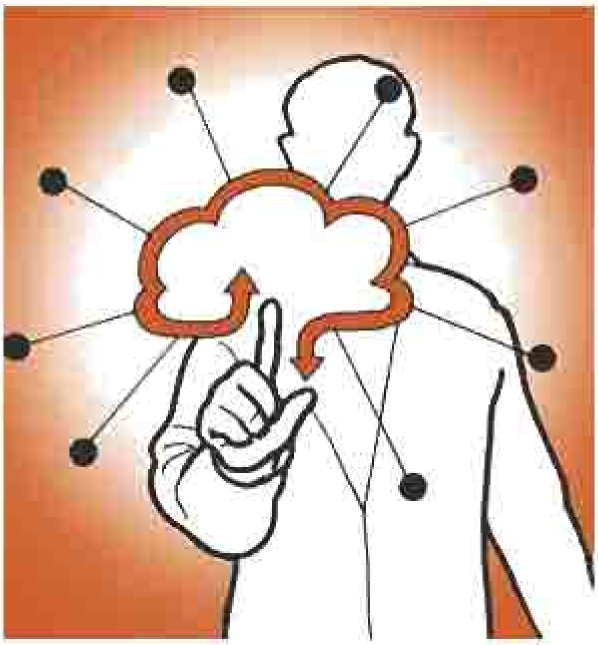

नेटवर्क, सिक्योरिटी एंड वेब डेवलपमेंट आदि का जिक्र प्रमुख रूप से किया जा सकता है। इस विधा में काम का अनुभव रखने वाले लोगों को भारतीय कंपनियों के अलावा मल्टीनेशनल कंपनियों में भी नौकरियों के पर्याप्त अवसर मिल सकते हैं।

सरकारी तौर पर यह पहले ही एलान किया जा चुका है कि डिजिटल इंडिया के लिए 4.5 लाख करोड़ रुपये की धनराशि का प्रावधान किया गया है और इसके तहत 17 लाख नए रोजगार के अवसर सृजित किए जाएँगे। इस कार्यक्रम के अंतर्गत देश को डिजिटल रूप से सशक्त अर्थव्यवस्था के तौर पर रूपांतरित किया जाएगा। 2.5 लाख से अधिक गाँवों को ब्रॉडबैंड के अंतर्गत लाया जाएगा। इसके अतिरिक्त इस योजना में देश के 100 से अधिक शहरों को स्मार्ट सिटी बनाने का भी प्रस्ताव है। क्लाउड कंप्यूटिंग की डिजिटल इंडिया के निर्माण में भी महत्वपूर्ण भूमिका होगी। क्लाउड कंप्यूटिंग की टेक्नोलॉजी द्वारा सबसे अधिक लाभ देश के लघु उद्योगों को मिलने की उम्मीद है। इसका प्रभाव औद्योगिक विकास और नए रोजगार के सृजन में देखने को मिल सकता है।

कंप्यूटर और आईटी के क्षेत्र में काफी नई उथल-पुथल देखने को मिली है। इंटरनेट के बढ़ते इस्तेमाल को इस शृंखला में एक महत्वपूर्ण कड़ी के तौर पर चिह्नित किया जा सकता है और क्लाउड कंप्यूटिंग एक उभरता हुआ करिअर है।

क्लाउड कंप्यूटिंग के अंतर्गत ईएमसी क्लाउड आर्किटेक्ट, आईबीएम सर्टिफाइड सॉल्यूशन आर्किटेक्ट, एचपी एक्सपर्ट वन क्लाउड सर्टिफिकेशन, सर्टिफिकेट ऑफ क्लाउड सिक्योरिटी नॉलेज, वीएम वेयर क्लाउड सर्टिफिकेशन, ईएमसी क्लाउड इन इंफ्रास्ट्रक्चर एंड सर्विसेज सर्टिफिकेशन आदि कोर्सेज लोकप्रिय हैं।

बच्चे और किताबों की दुनिया

"हर स्कूल में पुस्तकालय हो, इससे अच्छी बात और क्या हो सकती है? पर ऐसा हो भी जाए तो यह जरूरी नहीं कि भारी संख्या में बच्चे बहुत सारी किताबें पढ़ने लगेंगे। पुस्तकालय की व्यवस्था एक आर्थिक सवाल है। बच्चों में किताब पढ़ने की आदत का होना एक शैक्षिक सवाल है।" यह कथन है मान्य शिक्षाविद् प्रोफेसर शिवकुमार का। 'आर्थिक सवाल' और 'शैक्षिक सवाल' मूलतः दो परस्पर विरोधी ध्रुवांत हैं। मैं सोचता हूँ, अगर इस ध्रुवांत के बरअक्स एक अध्यापक सुगमकर्ता की भूमिका में आ जाए तो निश्चय ही बच्चों और किताबों के बीच संभावनाओं के दरवाजे खुल सकते हैं। मुझे बचपन की याद है, स्कूली किताबों से इतर कोई पत्रिका या पुस्तक मिलने पर गजब का मजा आ जाता था। फिर सही दिशा में प्रयास करके आज के इन्फॉर्मेशन टेक्नोलॉजी के सुपर हाइवे पर सरपट भागते बच्चों को पुस्तक की तरफ क्यों नहीं मोड़ा जा सकता?

दिनेश प्रताप सिंह 'चित्रेश'

जन्म : 1 मार्च, 1954 सुंदरगढ़, उड़ीसा।

शिक्षा : स्नातक।

संप्रति : सेवानिवृत्त अध्यापक।

लेखन एवं प्रकाशन : लगभग 40 वर्षों से लघुकथा, कहानी, रेखाचित्र, बाल साहित्य में निरंतर लेखन।

सम्मान : अमृतलाल नागर बाल कथा सम्मान।

संपर्क : मोबाइल— 9450143844

ईमेल— chitreshsin@gmail.com

अध्यापक बनने के बाद मैंने इस प्रश्न पर कई स्तरों पर विचार किया। यद्यपि आज के बच्चों की ललक टीवी, कंप्यूटर और इंटरनेट की दिशा में बहक चुकी है। फिर भी मेरे ख्याल से बच्चों को पुनः पुस्तकों के दायरे में लाया जाना चाहिए। क्योंकि गैजेट से लगे रहना एक लत है, जबकि पुस्तक पढ़ने की रुचि एक संस्कार है। अध्यापकीय दायित्व के तहत बच्चों में अध्ययनशीलता के संस्कार का विकास प्राथमिकता के स्तर पर किया जाना चाहिए।

बचपन के दिनों में स्कूलों में किताबें उपलब्ध रहती थीं। 'गंगा पुस्तक माला' की छोटी-छोटी पुस्तकों का सेट हर साल एक या दो बार आता था। बाल भारती, बाल सखा, रानी बिटिया, राजा बेटा जैसी पत्रिकाएँ भी बीच-बीच में आ जाती थीं। पत्रिकाओं के एक साथ कई अंक आते थे। गुरुजी ये किताबें हमें देते थे। शनिवार की बाल सभा में पत्रिकाओं से कहानी वाचन होता था। स्वर के साथ कविताएँ पढ़ी जाती थीं, तब पढ़ाई-लिखाई से इतर गतिविधियों का जमाना नहीं था, लेकिन इतना कुछ तो गुरुजी करवाते ही थे। स्कूल वाले दिनों की यादों के आधार पर मैं कई विद्यालयों में बच्चों को शिक्षणेतर पुस्तकों की दिशा में मोड़ने का प्रयास कर चुका हूँ। इन अनुभवों को आपके साथ बाँटने के पूर्व मैं विद्यालयों खासकर प्राथमिक और उच्च प्राथमिक स्तर पर पुस्तकालय की वर्तमान स्थिति पर चर्चा करना चाहूँगा। मेरा अनुभव है, अधिकांश प्राथमिक और उच्च प्राथमिक विद्यालयों में पुस्तकालय नहीं हैं। जिन विद्यालयों में

किताबें हैं, वहाँ ये आलमारी या बक्से में बंद रखी जाती हैं। पढ़ने-पढ़ाने से इनका कोई सरोकार नहीं होता।

ऐसे ही एक मामले की चर्चा करना चाहूँगा। एक उच्च प्राथमिक विद्यालय जो सन् 1885 में स्थापित हुआ था और जिसमें पुराने से लेकर नए समय के बहुत से सामान थे। यहाँ 6' X 5' X 4' की नाप वाला एक लकड़ी का संदूक था, उसके ऊपर सफेद रंग से 'पुस्तकालय' लिखा था। मेरे काफी अनुरोध और अनुनय-विनय के पश्चात प्रधानाध्यापक महोदय इसे खोलने को राजी हुए, जबकि इससे पूर्व 18 साल पहले चार्ज लेते समय उन्होंने इसे खोलकर पुस्तकों का मिलान किया था और फिर सूची सहित इसे बंद करके भूल गए थे। 'ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड' और 'डी.पी.ई.पी.' के दिनों में आई पुस्तकें अलमारी में बंद थीं।

> "बाल मनोविज्ञान के पंडितों का मानना है कि नैतिक उपदेशों से भरी किताबें बच्चे नहीं पसंद करते। पुस्तक, जिसका प्रस्तुतिकरण तत्काल जिज्ञासा जगाने वाला और रोचक हो। भाषा सरल और बोधगम्य हो। किताब में विषयवस्तु से जुड़े करीब एक तिहाई गत्यात्मक चित्र हों तो इस प्रकार की किताबें बच्चों को भाती हैं। बच्चों में पुस्तकों के लेन-देन के क्रम में मुझे अनुभव हुआ कि बच्चों की सोच, कल्पना और अनुभूति को प्रतिबिंबित करने वाली किताबें बाल पाठकों को चुंबक की तरह खींचती हैं।"

खैर जिस दिन यह संदूक खोला गया, एक अजीब-सी तीखी गैस का भभका कमरे में भर उठा। करीब आधे घंटे बाद देखने पर पता चला कि इसमें बहुत ही महत्वपूर्ण किताबें थीं। इतिहास, महाकाव्य, पुराण, उपन्यास, कहानी, जीवनी, लोक कथा, विदेशी लेखकों की कृतियों के हिंदी अनुवाद संबंधी छोटी-बड़ी चार सौ किताबें संदूक में से निकलीं। दुर्भाग्यवश इनमें काफी किताबों के पन्ने आपस में चिपक गए थे। हरेक बरसात में छत से टपके पानी का रिसाव संदूक में हो गया था और कथासरित्सागर, दशकुमारचरित, अलिफलैला, राबिन्स क्रूसो, भारत में ब्रिटिशराज (सुंदरलाल), मध्य एशिया का इतिहास (राहुल सांकृत्यायन) जैसी पुस्तकें जमकर बेकार हो गई थीं।

यह कुप्रबंधन और पुस्तकों के प्रति संवेदनहीनता का मामला है। यदि पुस्तकों का उपयोग हुआ होता तो इस हालत में न पहुँचतीं। अध्यापक यह तर्क देते हैं कि बच्चे पाठ्य पुस्तक ही नहीं पढ़ते, फिर अन्य किताबें क्यों पढ़ेंगे? स्कूली किताबें पढ़ना उनकी मजबूरी होती है, इसलिए यह उन्हें अनाकर्षक और उबाऊ लगती हैं। इसके विपरीत स्वतंत्र रूप से पढ़ी जाने वाली बालोपयोगी पुस्तकें किसी दबाववश नहीं, बल्कि सहज आकर्षण और ललक से पढ़ी जाती हैं। इसलिए बच्चों का मन इन पुस्तकों में खूब रमता है। इससे उनकी जानकारी समृद्ध होती है और सीखने के स्तर में सुधार होता है। प्रशिक्षण शिविरों और अभिप्रेरण अभियानों से अध्यापकों में यह समझ पैदा की जानी चाहिए कि शिक्षण को प्रभावी और आनंददायी बनाने में स्कूल पुस्तकालय की भूमिका महत्वपूर्ण हो सकती है।

पुस्तकालय को लेकर हमारे दिमाग में एक परंपरागत छवि है, जिसमें पुस्तकों से भरी अलमारियाँ, सूची पत्र, पुस्तक निर्गमन रजिस्टर संबंधी कई उपक्रम होते हैं। छोटे बच्चों के पुस्तकालय का अलग रूप होना चाहिए, जो बच्चों के लिए रोचक और खुला हो। इसमें प्रबंधन संबंधी जटिल औपचारिकताएँ न हों। ये सहज पुस्तकालय प्राथमिक स्तर के बच्चों के लिए घरेलू मौखिक संस्कृति से विद्यालयीय साक्षर संस्कृति में प्रवेश के पुल बन सकते हैं।

सबसे जरूरी यह है कि अध्यापकों के पास बच्चों की किताबों के संबंध में सही समझ हो। कैसी किताबें बच्चों के लिए अच्छी रहेंगी? कौन-सी विषयवस्तु वाली पुस्तकें बच्चों को पसंद आती हैं? हमारी यह धारणा होती है कि बच्चों को दी जाने वाली पठन सामग्री से उनको ज्ञान मिलना चाहिए। इससे उनको सीख (शिक्षा या उपदेश) मिले, जबकि हमें जानना चाहिए कि इस प्रकार की किताब को लेकर बच्चे क्या सोचते हैं? बाल मनोविज्ञान के पंडितों का मानना है कि नैतिक उपदेशों से भरी किताबें बच्चे नहीं पसंद करते। पुस्तक, जिसका प्रस्तुतिकरण तत्काल जिज्ञासा जगाने वाला और रोचक हो। भाषा सरल और बोधगम्य हो। किताब में विषयवस्तु से जुड़े करीब एक तिहाई गत्यात्मक चित्र हों तो इस प्रकार की किताबें बच्चों को भाती हैं। बच्चों में पुस्तकों के लेन-देन के क्रम में मुझे अनुभव हुआ कि बच्चों की सोच, कल्पना और अनुभूति को प्रतिबिंबित करने वाली किताबें बाल पाठकों को चुंबक की तरह खींचती हैं।

यह सुना जाता है कि बच्चों की अध्ययनशीलता का संबोध घट रहा है। यह सच है। देखने में आ रहा है कि आम परिवारों में बड़ों में ही पढ़ने की रुचि समाप्तप्राय है, फिर बच्चे पुस्तकों से दोस्ती की प्रेरणा कहाँ से लें? पहले टेलीविजन था ही नहीं। दो-चार प्रतिशत लोगों के पास बमुश्किल रेडियो हुआ करते थे। पढ़े-लिखे परिवारों में पुस्तक पढ़ने का प्रचलन था। गाँव में चौपाल और अलाव के इर्द-गिर्द किस्से-कहानियों की दुनिया आबाद रहती थी। इस तरह सहज ही बच्चे की दुनिया में साहित्य का संचरण हो जाता था। बच्चे साहित्य की तलाश में पुस्तकों की दिशा में बढ़ते थे, किंतु यह कड़ी अब टूट चुकी है। जब बड़े ही साहित्य से विमुख हैं तो वे बच्चे के लिए अच्छी किताबें घर लाएँगे, यह हम कैसे मान लें?

अंततः ले-देकर बात विद्यालयों पर आ जाती है। यहाँ कम ही ध्यान दिया जाता है कि बच्चे पाठ्येतर पुस्तकों में रुचि लें। आज के समय में किताबों की प्रतिद्वंद्विता टेलीविजन से है। टेलीविजन अधिकतर घरों में उपलब्ध है और बच्चों के मनोरंजन का साधन बन

चुका है। फिलहाल इसका बाल जीवन में इतना जबरदस्त हस्तक्षेप है कि यह बच्चों की सोच, व्यवहार, जीवनशैली, मासूमियत हर कहीं गलत ढंग का परिवर्तन ला रहा है। पश्चिमी देशों में तो हालात और भी खराब हैं, इसलिए वहाँ भी बच्चों को पुस्तकों की तरफ लौटाने के प्रयास चल रहे हैं। पुस्तकों को केंद्र में लाने के लिए यूनेस्को द्वारा बाकायदे सन् 1995 में 23 अप्रैल की तारीख 'विश्व पुस्तक दिवस' को समर्पित की जा चुकी है।

आज की तारीख में बच्चों को पठन-पाठन की आदत से जोड़ना बहुत ही चुनौतीपूर्ण कार्य बन चुका है। विशेष रणनीतियों द्वारा ही बच्चों के अंदर किताब पढ़ने की ललक पैदा की जा सकती है। सीधे-सीधे बच्चों तक किताब पहुँचाकर किसी सकारात्मक परिणाम की आशा व्यर्थ है। सबसे पहले होना यह चाहिए कि बच्चे किताबों के प्रति आकर्षित हों। इसके लिए मैं विद्यालय में उपलब्ध पुस्तकें एक कमरे में प्रदर्शित रूप में रखवाता था। रस्सी पर टँगी या मेज पर फैलाकर रखी पुस्तकें बच्चों की नजर खींचती हैं। खासकर ऐसी किताबें जिनके मुखपृष्ठ के चित्र गतिशील अवस्था में होते हैं। इस कमरे में कहानी सुनाई जा सकती है। कविता पाठ कराया जा सकता है। श्यामपट्ट पर पुस्तकों के शीर्षक लिखकर उन्हें खोजकर लाने के लिए कहा जा सकता है। इससे बच्चे पुस्तकों के पास जाएँगे, उन्हें छुएँगे, और पलटेंगे। पुस्तक लाने पर उसके चित्र को आधार बनाकर बच्चों से बातचीत करना एक अच्छा तरीका है बच्चों को पुस्तक के प्रति संवेदित करने का। यह हिरन क्यों भाग रहा है? घात लगा रहा भेड़िया क्या खरगोश को दबोच लेगा? भागते चोरों को गाँव वाले पकड़ पाएँगे या नहीं? जैसे सवाल बच्चों में किताबों के प्रति ललक तो बनाएँगे ही, उनके भाषा विकास और अभिव्यक्ति क्षमता के लिए भी कारगर होंगे। कुछ बाल पुस्तकों में भाषा नहीं होती, सिर्फ चित्रों से कहानी कही गई होती है। इन किताबों में कक्षा एक और दो के बच्चे भी रुचि ले सकते हैं, जो पढ़ना-लिखना नहीं जानते। वह अपने अनुभव और सोच से कहानी का घटनाक्रम जोड़ते हैं। यह बच्चों की कल्पनाशीलता और तार्किकता को बढ़ाती है। पुस्तक रखने का यह कमरा बच्चों का मनोरंजन कक्ष बन जाता है। बस निरंतरता, सजगता और धैर्य की जरूरत होती है। दरअसल किसी कमरे में किताबें प्रदर्शित कर देने या दो-चार कविता-कहानी सुना देने मात्र से बच्चे इसे नहीं पसंद करने लगेंगे। सुगमकर्ता की भूमिका में आप अध्यापक को यह कार्य चुनौती में लेना पड़ता है और विधिवत चार-छह माह तक प्रयास करने के बाद ही परिणाम की उम्मीद बनती है।

देखने में आया है कि बच्चों के नाम पर प्रकाशित होने वाली काफी सामग्री बाल साहित्य के मानक पर खरी नहीं उतरतीं। इसका प्रस्तुतिकरण नीरस और उबाऊ होता है, इसलिए बच्चे इन्हें पढ़ना पसंद नहीं करते। बच्चों के लिए पुस्तक की खरीद में सोच-समझ की विशेष जरूरत होती है। पुस्तकों में अगर बच्चों की दुनिया की झलक होगी, उसके बहुरंगी चित्रों में गतिशीलता होगी तो बच्चे इन पुस्तकों से दोस्ती करेंगे। रहस्य-रोमांच की कथाएँ, साहसिक अभियान, इतिहास और पुराण संबंधी कहानियाँ, लोक कथाएँ और परियों की कहानियाँ बच्चों को खूब भाती हैं। मानवीय संस्पर्श वाली कविताएँ, जीवनी, संस्मरण और चित्रकथाओं में बच्चे रुचि लेते हैं। इस प्रकार की बाल रुचि के अनुकूल साहित्य की उपलब्धता के साथ माहौल बनाया जाए तो बच्चे पुस्तकों की तरफ आकर्षित होने लगेंगे। धीरे-धीरे वे खुद-ब-खुद पुस्तकें पलटना शुरू करेंगे। स्वयं पढ़ने के साथ-साथ मित्रों को भी प्रेरित करेंगे—'इसे पढ़ो', मजा आएगा। बच्चों की पुस्तकों से दोस्ती की राह खुल जाएगी। हमें इस बात की चिंता नहीं करनी चाहिए कि पुस्तक बच्चों के हाथों में पड़कर फट जाएगी। शुरू में ऐसा हो सकता है, मगर बाद में बच्चे किताबों को लेकर अपनी जिम्मेदारी समझने लगेंगे। वैसे यह भी जानना प्रासंगिक होगा कि प्रयोग होने पर किताबों का फटना या गंदी होना सामान्य बात है। किताबों का रखे-रखे दीमक या झींगुर का आहार बन जाना या बरसाती पानी से सीलन पाकर खराब होने से अच्छा है कि बच्चे इनका उपयोग करें। यह मान लेना कि बच्चे पढ़ना नहीं चाहते हैं, मात्र अर्धसत्य है। बल्कि सत्य यह है कि बच्चों तक सुरुचिपूर्ण, मनोरंजक और उद्देश्यपूर्ण पठन सामग्री पहुँचाने का गंभीर प्रयास नहीं हुआ। साथ ही घर-परिवार से लेकर विद्यालय तक उनके अंदर सोई पड़ी पठन-रुचि को जागृत करने के प्रेरक माहौल का अभाव रहा है। विद्यालयीय स्तर पर अब इस दिशा में प्रयास किया ही जाना चाहिए। इसकी जिम्मेदारी ऐसे समर्पित शिक्षक को सौंपी जानी चाहिए, जो कि नौकरी के बजाय अपने कार्य को सेवाभाव से करने में विश्वास रखता हो।

अभी देखने में आ रहा है कि कुछ शिक्षक, साहित्यकार और संस्थाएँ बच्चों में पठन रुचि पैदा करने का प्रयास कर रहे हैं। यह एक सुखद पक्ष है।

• • •

वर्तमान साहित्यिक संदर्भों में संत कबीर की प्रासंगिकता

भारतीय धर्म-साधना के इतिहास में कबीरदास ऐसे महान विचारक और प्रतिभाशाली महाकवि हैं, जिन्होंने शताब्दियों का उल्लंघन कर दीर्घकाल तक भारतीय जनता का पथ आलोकित किया और सच्चे अर्थों में जन-जीवन का नायकत्व किया। संत-मत के समस्त कवियों में कवि कबीर सबसे अधिक मौलिक और प्रभावशाली थे। सहजता उनकी रचनाओं की सबसे बड़ी शोभा और कला की सबसे बड़ी विशेषता है।

कबीर एक फक्कड़ निर्गुणवादी संत पुरुष थे। उन्होंने हिंदू-मुसलमान दोनों को धर्म के नाम से संकीर्णता को खूब फटकारा। उनके समय में वाराणसी में धर्म के नाम से साधु-संत लोग जनता को खूब लूटते थे।

डॉ. प्रभु चौधरी

संप्रति : संपादक (सामाजिक न्याय संदेश)।

लेखन एवं प्रकाशन : राजभाषा, राष्ट्रभाषा एवं देवनागरी लिपि तथा समसामयिक विषयों एवं महापुरुषों के बारे में लगभग 3000 लेख प्रकाशित।

पुरस्कार : आदर्श शिक्षक सम्मान, राजभाषा गौरव सम्मान, हिंदी सेवी सम्मान, हिंदी भूषण सम्मान, भाषा भूषण सम्मान।

संपर्क : मोबाइल— 9893032718

ईमेल— dav.pc52@gmail.com

अंधविश्वास और रूढ़िवाद दोनों धर्मों में कूट-कूटकर भरा हुआ था। कबीर ने दोनों धर्मों के मतावलंबियों को उपदेश किया कि इस प्रकार वे लोगों को गलत रास्ते पर न ले जाएँ। कबीर हिंदी साहित्य के पहले प्रगतिशील कवि हैं। उनकी जो भी रचनाएँ इस समय प्राप्त हैं, वे सब फुटकर पदों, साखियों, रमैनियों या अन्य प्रकार की कविताओं का संग्रह हैं। कबीर अनपढ़ थे, अतः वे अपनी कविताओं को कहते और उनके शिष्य उन पदों को लिखते थे। वे सब 'बीजक' में संग्रहीत हैं। कबीर गरीब जुलाहे थे। पाखंडियों की उन्होंने कठोर शब्दों में भर्त्सना की है। उनकी मान्यता है कि भगवान निराकार और निर्गुण तथा रूपरहित है। उस भगवान को दशरथ पुत्र राम न कहकर 'निराकार निर्गुण राम' कहा है। सबके हृदय में रमने वाले उस निराकार प्रभु को ही कबीर ने राम माना है।

उनका 'राम' शब्द सब गोचर पदार्थों से विलक्षण है। राम नाम का आधार लेकर कबीर ऐसी भक्ति की स्थापना करना चाहते थे जो हिंदू-मुसलमान दोनों को ग्राह्य हो सके, अतः उन्होंने राम-रहीम को एक स्थापित कर संकीर्ण धार्मिक बंधनों से मुक्त कर दिया। सर्वसुलभ होने के कारण उन्होंने 'राम नाम' की महिमा अधिक मानी। वे मूर्तिपूजा के कट्टर विरोधी थे। अतः वे कहते हैं—

पाथर पूजै हरि मिलें, तो मैं पूजूँ पहार।
ताते तो चाकी भली, पीस खाए संसार।।

वे जाति-पाँति के कट्टर विरोधी थे। 15वीं शताब्दी के वे सर्वश्रेष्ठ निराला कवि हैं। हिंदी साहित्य में इस प्रकार का क्रांतिकारी व्यक्तित्व दूसरा मिलना कठिन है। वे सच्चे अर्थ में समाज सुधारक थे। सभी धर्म उनके लिए समान थे।

कबीर के जीवन का उद्देश्य केवल कविता करना मात्र नहीं था। उन्होंने अपनी

प्रतिभा का प्रदर्शन साहित्य में नहीं किया, केवल अपनी आत्मतृप्ति के लिए काव्य-सृजन किया। उन्होंने जो भी काव्य सृजन किया, वह समाज की कुरीतियों और अंधविश्वास को दूर करने के लिए पर्याप्त था।

कबीर संस्कारों से मूलतः हिंदू थे। अतः आत्मा, जीव, मोक्ष और सृष्टि के बारे में उन्होंने हिंदू धर्म का दृष्टिकोण अपनाया। मायादवा हिंदू धर्म की विशेषता है। माया आत्मा और परमात्मा का मिलन नहीं होने देती, इसीलिए कबीर ने इन दोनों को (कनक और कामिनी) खूब कोसा।

कबीर ने समाज में गुरु को बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान दिया है। उनका कहना है कि इस भवसागर को पार करने के लिए गुरु की बहुत ही आवश्यकता है। आधुनिक समाज में छात्र अपने से बड़ों का आदर

“कबीर का मुख्य लक्ष्य समाज को सुधारना और लोगों में एकता स्थापित करना था। उन्होंने जो भी देखा और सुना उसे निर्भयतापूर्वक कह डाला। उन्हें किसी भी बात का डर नहीं था। समाज में फैली कुरीतियों और बाह्य आडंबरों का खंडन करना ही उनका मुख्य मंत्र था। 'सत्यम्-शिवम्-सुंदरम्' का राग अलापने वाले हिंदी साहित्य को मानवता का यह स्वर कबीर से ही प्राप्त हुआ। लोकप्रिय और जनसामान्य का काव्य लिखने का प्रारंभ कबीर की रचनाओं द्वारा ही हुआ। तुलसीदास के बाद कबीर ही सर्वाधिक लोकप्रिय कवि हुए।”

नहीं करते, जो बच्चे अपने माता-पिता का सम्मान नहीं करते, वे गुरुजनों का सम्मान कैसे करेंगे? ऐसे लोगों के लिए कबीर कहते हैं कि—

गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागूँ पाँय।
बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो बताय।।

कबीर गुरु की महानता का बखान करते हुए कहते हैं कि गुरु के बिना मैं ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकता। गुरु के बिना मेरा ज्ञान अधूरा है। उपर्युक्त दोहा आज के छात्र-छात्राओं के लिए बहुत ही उपयोगी और सही है।

कबीर का साहित्य केवल साहित्य ही नहीं है वह धर्म भी है, दर्शन भी है, नीतिशास्त्र भी है, पुराण भी है, सब कुछ है। कबीर की भाषा सधुक्कड़ी है अर्थात इसमें पंजाबी, राजस्थानी, ब्रज, अवधी और खड़ी बोली का मिश्रित रूप मिलता है। कबीर टूटी-फूटी भाषा द्वारा अपना काम चला लेते थे। यद्यपि उन्हें छंदशास्त्र का ज्ञान नहीं था, फिर भी उनकी कविता अत्यंत मर्मस्पर्शी हो उठी है।

कबीर ने सीधी-सादी उपदेश पद्धति अपनाई। उन्हें ज्ञान, प्रेम अथवा किसी एक भाव के कटघरे में बंद नहीं किया जा सकता। उनमें

ज्ञान भी है और सूफी मत भी है। वे आकाश के सूर्य और चंद्रमा हैं, जिनका प्रकाश युग-युगांतर तक मानव को आदरता का संदेश देता रहेगा।

कबीर ने उस समय समाज में फैली कुरीतियों का खंडन किया। राम और रहीम में सामंजस्य स्थापित कर धर्म के नाम पर होने वाले अनाचारों का खुलकर विरोध किया। इस दृष्टि से यदि हम देखें तो कबीर के सभी विचार आधुनिक युग में सही अर्थों में प्रासंगिक हैं। उनका विचार है कि आराध्यदेव हमारे मन में हैं। उस भगवान को पहचानने का प्रयत्न करना चाहिए। कबीर की मानसिक भक्ति आनंद और शांति से संपन्न अंतःकरण की स्वाभाविक शक्ति है, इसीलिए सहज और सरल है। वे एक रहस्यवादी कवि थे।

जल में कुंभ, कुंभ में जल, बाहर-भीतर पानी।
फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यह तथ काथौ गियानी।।

घड़ा फूट गया, जल में जल समा गया। कोई बंधन ही नहीं रहा। एकाकार की यह अंतिम मंजिल है और बहुत ही सरल है। उनका यह कहना बहुत ही सत्य है।

ढाई अक्षर प्रेम के, पढ़े सो पंडित होय; जब हम प्रेम का ढाई अक्षर पढ़ लेते हैं तो हम यह रहस्य समझ लेते हैं। यह रहस्य बहुत ही गहरा और गूढ़ है।

कबीर ने हमारे साहित्य को सुसंपन्न किया और हमारे मानसिक स्तर को भी उच्च बनाया। कबीर का मुख्य लक्ष्य समाज को सुधारना और लोगों में एकता स्थापित करना था। उन्होंने जो भी देखा और सुना उसे निर्भयतापूर्वक कह डाला। उन्हें किसी भी बात का डर नहीं था। समाज में फैली कुरीतियों और बाह्य आडंबरों का खंडन करना ही उनका मुख्य मंत्र था। 'सत्यम्-शिवम्-सुंदरम्' का राग अलापने वाले हिंदी साहित्य को मानवता का यह स्वर कबीर से ही प्राप्त हुआ। लोकप्रिय और जनसामान्य का काव्य लिखने का प्रारंभ कबीर की

रचनाओं द्वारा ही हुआ। तुलसीदास के बाद कबीर ही सर्वाधिक लोकप्रिय कवि हुए। आज भी हजारों-लाखों लोग खंजड़ियों पर 'कहत कबीर सुनो भई साधु' कहकर कविता और जीवन का अटूट संबंध स्थापित करते हैं।

हिंदू और मुसलमान दोनों के बीच वे समान रूप से प्रिय थे। 'मसि कागद न छूने' पर भी कबीर को भाषा पर पूर्ण अधिकार था। उनकी सब रचनाएँ आज भी अमूल्य निधि हैं। डॉ. हजारीप्रसाद

द्विवेदी के शब्दों में वह 'भाषा का डिक्टेटर' था। उनका हिंदी साहित्य में उच्च स्थान है। वे केवल समाज सुधारक, समाजसेवक और दार्शनिक न होकर उनका मूल्यांकन साहित्यिक के नाते अधिक है। वे मानवता के प्रेमी थे। उनकी दृष्टि में प्रत्येक मानव समान रूप से सामाजिक समानता और धर्म का अधिकारी है जो आज के युग में लोगों के लिए अतिआवश्यक है। वे हिंसा के भी घोर विरोधी थे। मानव और सभी प्राणियों से प्रेम करना वे अपना कर्तव्य समझते थे। आज के समाज में जहाँ हिंसा का घोर तांडव नृत्य हो रहा है, वहीं कबीर का लोगों के प्रति प्रेम और अहिंसा के विचारों के सामने हम नतमस्तक हैं।

कबीर ने हिंसा का घोर विरोध किया। वे जीवहत्या और मांसाहार के कट्टर विरोधी थे। इसके लिए उन्होंने मांसाहारी लोगों की कटु आलोचना की है।

बकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाल।
जे नर बकरी खात हैं, तिनके कौन हवाल।।

कबीर की वाणी में अनुभव, ज्ञान, कल्पना और साधना का सम्मिश्रण दिखाई देता है। इसी कारण उनकी वाणी अन्य संतों की वाणी से अधिक प्रभावशाली है। गांधी जी के समान वे भी सत्य, अहिंसा और दया के प्रचारक थे। हिंदू और मुसलमान दोनों को वे प्रेम के मार्ग पर ले जाना चाहते थे जिससे आए दिन के झगड़ों का नाश हो जाए। उन्होंने आत्मा को स्त्री और परमात्मा को परम पुरुष का रूप देकर आध्यात्मिक रहस्यवाद की उच्चकोटि की रचनाएँ कीं।

कबीर एक पद में मानव जन्म को सार्थक बनाने की सलाह देते हैं। वे कहते हैं कि दुबारा मानव-जीवन मिलना मुश्किल है जिस प्रकार नट अनेक भेश और रूप धारण करता है, उसी प्रकार मनुष्य अनेक जन्म धारण करता है। अपने जीवन को सार्थक करने के लिए अहंकार जैसे विकार को छोड़कर ईश्वर रूपी प्रेम को प्राप्त किया जा सकता है। उन्होंने जीव के प्रेम का वर्णन अधिक किया। हमारा जीवन क्षणभंगुर है जो आज है वह कल नहीं होगा। अतः इस अस्थायी शरीर पर क्यों अभिमान किया जाए। इस शरीर की रक्षा करने वाला कोई नहीं है, इस बात को हमें अच्छी तरह जान लेना चाहिए। कबीर कहते हैं कि छल-कपट से हमने जो सारी संपत्ति एकत्रित की है, वह यहीं रह जाएगी। अतः माया-मोह से हटकर हमें सच्चे मन से भगवान का भजन करना चाहिए। इससे तेरा उद्धार हो जाएगा।

कौन विचारि करत हौ पूजा,
आत्म राम और नहीं दूजा।।

तुम क्या सोच-सोचकर देवी-देवताओं की पूजा करते हो। आत्मा ही राम है, अन्य कोई दूसरा नहीं। अतः मनुष्य को अहं की भावना को छोड़कर सबसे प्रेम-भाव से व्यवहार करना चाहिए। निःस्वार्थ भाव से लोगों की सेवा करनी चाहिए। हम शत्रु और मित्र अपने शब्दों के द्वारा ही बना सकते हैं। कबीर कहते हैं कि–

'शब्द' 'शब्द' सब कोई कहे, शब्द के हाथ न पाँव।
एक शब्द औषध करे, एक शब्द करे घाव।
एक शब्द सुखरास है, एक शब्द दुखरास।
एक शब्द बंधन करे, एक शब्द गलफाँस।।

आज के युग में धन-संपत्ति के लिए भाई-भाई एक दूसरे का दुश्मन बना हुआ है। उनके लिए कबीर के ये वचन बहुत ही सार्थक हैं।

उनके सभी विषय आज की दृष्टि में देखें तो वे शत-प्रतिशत सार्थक निकलते हैं। आज समाज में अराजकता है, धर्म के नाम पर लोगों का पथ भ्रष्ट कराकर उनके विश्वास पर कुठाराघात करते हैं। हिंसा की अधिकता है। धन-संपत्ति के लिए भाई-भाई की हत्या करने से नहीं हिचकिचाते हैं। समाज में अनुशासन का अभाव है, इसलिए कबीर के सारे पद, उनके विचार आधुनिक समाज के लिए बहुत उपयोगी हैं। धर्म हमें सम्मान पर ले जाने के लिए है। कबीर इस पर जोर देकर कहते हैं कि मानवता के नाम पर अत्याचार मत करो। सर्वधर्म समानत्व की भावना का कबीर प्रचार करते हैं। हिंदी साहित्य के वे सर्वश्रेष्ठ संत कवि हैं।

हमारी चिर-परिचित, बहुआयामी एवं बहुपयोगी 'गाँठ'

एक, दो या कई धागों या रस्सी के एक भाग में छल्ला-सा बनाकर दूसरे छोर या अन्य भाग को उस छल्ले से गुजारकर खींचने से 'गाँठ' बनती है। विभिन्न भारतीय भाषाओं में गाँठ को निम्नवत नामों से जाना जाता है : गुजराती में 'गाँठ', कन्नड़ में 'गंटु', मलयालम में 'केट्टयलिक्क', तेलुगू में 'मुड़ी', मराठी में 'गाथा', पंजाबी में 'गंढ', बांग्ला में 'गिंत्ता' इत्यादि। विश्व के अन्य प्रमुख देशों में बोली जाने वाली भाषाओं में गाँठ को निम्नवत नामों से जाना जाता है : चीनी में 'जी', जर्मन में 'नोटेन', स्पैनिश में 'एल नुडो', फ्रेंच में 'नौड', इटेलियन में 'ईल नोडो', ग्रीक में 'कोम्पोस', अफ्रीकन में 'नूप', जापानी में 'मुसुबीमे', रूसी में 'मोरस्कोय उजेल', उर्दू में 'गिरह' इत्यादि।

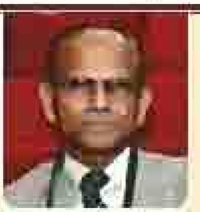

अशोक कुमार श्रीवास्तव

कृषि वैज्ञानिक गन्ना अनुसंधान में विगत 40 वर्षों का अनुभव, गन्ना संबंधित 24 पुस्तकों का लेखन/संपादन, इंडियन जर्नल ऑफ शुगर टेक्नोलॉजी का पाँच वर्षों तक संपादन हिंदी भाषा की प्रमुख पुस्तकें—'गन्ना उत्पादन और उपयोग' (राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से प्रकाशित) तथा 'उत्तर प्रदेश में गन्ना खेती की किसानोपयोगी आवश्यक जानकारी' (भारतीय अनुसंधान संस्थान से प्रकाशित)।

संपर्क :

ईमेल— shrivastavaashokindu@gmail.com

महान शायर मिर्जा गालिब के बारे में मैंने एक समाचार पत्र में पढ़ा था कि रात में सोने के बाद जब उनकी नींद खुल जाती थी तो वे सोचने लगते थे। उस समय बिजली नहीं होती थी तथा रात्रि के अँधेरे में रोशनी भी बमुश्किल हो पाती थी। कुछ विचार आने पर वे अपने पैजामे के नाड़े (इजारबंद) में एक के बाद एक गाँठ लगा लिया करते थे। एक बार एक दिन सुबह-सुबह उनके एक परिचित उनसे मिलने आए तो उन्होंने मिर्जा गालिब से उनके पैजामे के नाड़े में लगी गाँठों का राज जानना चाहा तो गालिब ने उनसे कहा कि हुजूर, कागज-कलम तो ले आइए। कागज-कलम ले आने पर उन्होंने उनसे लिखने को कहा। फिर एक गाँठ खोली और कुछ कहा। इसी तरह वे गाँठें खोलते गए और लिखने को कहते गए। 9-10 गाँठें खोलने और लिखवाने के उपरांत गालिब ने उनसे कहा कि अपने लिखे को पढ़कर सुनाइए। सुनने के बाद उन्होंने कुछ तरमीम (बदलाव) करवाए और कहा कि अब इसे इसे तरन्नुम में सुनाइए और इस तरह एक दिलकश शायरी बन गई।

रहीम कवि का यह दोहा—'रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो चटकाय, टूटे से फिर ना जुड़े, जुड़े तो गाँठ पड़ जाय' प्रेम रूपी धागे को तोड़ने को बरजता है क्योंकि इसके उपरांत यह प्रेम संबंध जुड़े या न भी जुड़े तथा जुड़ने पर भी उसमें गाँठ पड़ जाती है (यानी पूर्ववत सरसता नहीं रह जाती)। एक अन्य दोहे, 'रहिमन खोजे ईख में जहाँ रसनि की खानि, जहाँ गाँठ तहँ रस नहीं यही प्रीति में हानि' अर्थात रस की खान गन्ने के समान प्रेम में छलकी गाँठ रहने पर पूर्ववत प्रेम नहीं रह जाता है। एक अन्य दोहे— 'जहाँ गाँठ तहँ रस नहीं यह रहीम जग होय, मंडए तर की गाँठ में गाँठ गाँठ रस होय' के अनुसार व्यक्तिगत संबंधों में गाँठ (मतभेद) होने पर वहाँ प्रेम नहीं होता, लेकिन विवाह-मंडप में लगी गाँठें प्रेम के रस में सराबोर रहती हैं।

गाँठ शब्द सब्जियों के लिए भी प्रयोग होता है। 'गाँठ गोभी' तो आप में से बहुत लोग खाते होंगे। स्वादवर्धक प्याज को 'गँठा' भी कहते हैं।

भारतवर्ष के सबसे बड़े कृषि आधारित वस्त्र उद्योग का मूल स्रोत कपास की पैदावार 'गाँठ' की संख्या के रूप में व्यक्त की जाती है तथा एक गाँठ 170 किलोग्राम की होती है।

एक मुहावरा है कि 'बंदर को हल्दी की गाँठ क्या मिल गई कि वो पंसारी बन बैठा', अर्थात कुछ थोड़ा बहुत मिलने पर अपने को बहुत बड़ा आँकना। 'बात गाँठ बाँध लो' अर्थात भली प्रकार याद कर उसे व्यवहार में लाओ (जिससे आगे गलती न हो)। पंजाबी भाषा में कथन, 'गंड बन लै' भी इसी तथ्य को उजागर करता है। 'गाँठ का पूरा होना' व्यक्ति की संपन्नता को इंगित करता है। व्यक्तियों का नकारात्मक मेलजोल 'साँठ-गाँठ' कहलाता है।

'गिरवी-गाँठ' तो आपने सुना ही होगा, इसमें कोई जरूरतमंद व्यक्ति अपने आभूषण या बहुमूल्य वस्तु, जमीन, आदि किसी धनी व्यक्ति के यहाँ गारंटी के रूप में गिरवी (रेहन) रखकर अपनी जरूरत भर का धन ब्याज पर लेते हैं जिसे मयब्याज चुकाने के बाद ही अपना गिरवी रखा सामान वापस पाते हैं।

"हम सभी अपने बच्चों के, अपने जन्म व विवाह की 'वर्षगाँठ' हर वर्ष उत्साहपूर्वक मनाते हैं, विशेषकर किसी दंपती के विवाह की 25वीं वर्षगाँठ तो धूमधाम से मनाई जाती है, 50वीं वर्षगाँठ के तो कहने ही क्या। महापुरुषों के जन्म की वर्षगाँठ तो उनकी मृत्यु के उपरांत भी 'जयंती' के रूप में मनाते हैं।"

गाँठ का हमारे वस्त्र विन्यास से बहुत गहरा संबंध है। पैजामा, कटिवस्त्र, पेटीकोट आदि में प्रयुक्त नाड़े में गाँठ लगाकर उसे अपने नितंब पर रोका जाता है जो ढीली होने पर नीचे को सरककर हमें शर्मसार भी कर सकती है। इसके चलते आजकल इलास्टिक प्रचलन में आई है, परंतु फिर भी नाड़े का प्रयोग होता है क्योंकि वक्त के साथ जब इलास्टिक भी ढीली होकर हमें शर्मसार कर सकती है, ऐसे में तो नाड़े की गाँठ ही कम आती है। कन्याओं या स्त्रियों की केश राशि की सुरुचिपूर्ण साज-सँभाल में चोटी (परान्दा) या रिबन में गाँठ लगाई जाती है। जोड़े में प्रयोग किए जाने वाले वस्त्र विशेष जैसे जुराबें धोने के बाद एक दूसरे से 'गाँठ' लगाकर रखी जाती हैं ताकि पहनने के समय उन्हें ढूँढ़ने में समय नष्ट न हो। भाई-बहनों के एक ही जैसे पैजामे या कटिवस्त्र होने पर धोने के बाद उनकी पहचान करने के लिए भी नाड़े में अलग-अलग गाँठें लगा दी जाया करती थीं। जूतों के फीतों में लगी गाँठ का भी अपना ही महत्व है जिनके खुलने पर हममें से कई लोग गिरे होंगे। इनका स्थान भी आजकल वेलक्रो, इलास्टिक तथा हुक्स ले रहे हैं।

साड़ियों, दुपट्टों तथा चादरों के दोनों छोरों पर निकले धागों पर लगी सुरुचिपूर्ण गाँठें उन्हें चित्ताकर्षक बनाती हैं। राजस्थानी बाटिक प्रिंट 'टाई एंड डाइ' में कपड़े में छोटे-छोटे कंकड़ या गेहूँ आदि रखकर कपड़े के ऊपर से धागे से लपेटकर कसकर गाँठ लगाकर अलग-अलग रंगों में रंगकर एक आकर्षक डिजाइन तैयार होती है। कपड़ों की हाथ से सिलाई व बटन टाँकने में सूई में धागा लगाने के बाद उनके दोनों सिरों को मिलाकर गाँठ लगा दी जाती है। लखनऊ के विश्व प्रसिद्ध हस्तशिल्प वस्त्र उद्योग 'चिकनकारी' में महीन कपड़े (मलमल, केमरीक, शिफॉन आदि) पर सूई-धागे द्वारा अनेक प्रकार के सुरुचिपूर्ण टाँकों (जिनमें गाँठें भी लगती हैं) तथा जालियों को बनाया जाता है। धागे से बनाए जाने वाला एक अन्य हस्तशिल्प 'क्रोशिया' में धागे को एक सलाई (क्रोशे) के हुक पर लपेटते तथा गाँठें बनाते हुए एक खूबसूरत गोल, चौकोर मेजपोश, थालपोश, लेस, झालर आदि बना लेते है। इन गाँठों को 'मरोड़ी' भी कहते हैं।

टाई का वस्त्र-विन्यास का आकर्षण बढ़ाने में एक विशिष्ट महत्व है। इसे बाँधने में भी अनेक प्रकार की गाँठों (नॉट) का उपयोग होता है, जैसे—विंडसर नॉट तथा डबल स्केपिनो नॉट।

हिंदू विवाह में कन्या को मंगलसूत्र पहनाते हुए वर उसमें अटूट रिश्ते के प्रतीक के रूप में तीन गाँठें बाँधता है। आजकल तो मंगलसूत्र का स्वरूप ही बदल गया है, 'हुक्स' ने 'गाँठ' पर विजय पा ली है। गाँठों का स्त्रियों द्वारा गले और वक्षस्थल पर धारण किए जाने वाले आभूषण, हार की 'पुहाई' में मनकों के बीच गाँठ लगाकर एक निश्चित अंतराल निर्धारित करने के साथ-साथ उसे टूटने से भी बचाया जाता है।

पूर्ववर्ती समय में कुएँ से लोटे द्वारा पानी निकालने के लिए लोटे के मुँह पर एक विशेष प्रकार की गाँठ लगाई जाती थी, जिसके सही ढंग से न लगे होने पर लोटा कुएँ में गिर जाता था।

विद्यालय में 'स्काउट्स तथा गाइड्स' के कार्यक्रम में अनेक प्रकार की गाँठें लगाना सिखाया जाता था। गाय, बैल, भैंस तथा अन्य पालतू पशुओं को खूँटे से बाँधने के लिए, खेत जोतने के हल तथा सामान ढोने व परिवहन में प्रयुक्त बैलगाड़ी, बुग्गी, रथ आदि में जोतने में भी 'गाँठ' लगाने का उपयोग करते है। मछुआरे मछली पकड़ने के जाल में आवश्यकता और सुविधानुसार अनेक प्रकार की गाँठों का उपयोग करते हैं, जैसे—पालोमर, अलब्राइट, पच्चर, ट्राईलेन, किंगस्लिंग, स्नेल्ल, नेल गाँठ इत्यादि।

हम सभी अपने बच्चों के, अपने जन्म व विवाह की 'वर्षगाँठ' हर वर्ष उत्साहपूर्वक मनाते हैं, विशेषकर किसी दंपती के विवाह की 25वीं वर्षगाँठ तो धूमधाम से मनाई जाती है, 50वीं वर्षगाँठ के तो कहने ही क्या। महापुरुषों के जन्म की वर्षगाँठ तो उनकी मृत्यु के उपरांत भी 'जयंती' के रूप में मनाते हैं। राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी बहुत से महापुरुषों की वर्षगाँठ किसी विशेष रूप में तथा उनकी मानव कल्याण संबंधी उपलब्धियों की वर्षगाँठ भी हर वर्ष किसी नई थीम के साथ मनाई जाती है।

शरीर के किसी भी हिस्से में अचानक कुछ 'गाँठें' निकल आती हैं। इस गाँठों को 'रसौली' भी कहते है। इनमें से कुछ गाँठें कैंसरकारक व क्षय रोग (टीबी) भी हो सकती हैं। शरीर पर बनी कुछ गाँठें 'लिपोमा' भी कहलाती हैं। 'बदगाँठ' त्वचा के ऊपर रेशेदार या

संयोजी ऊतकों से बनी एक गाँठ है जो सामान्यतया गैर-कैंसरकारक होती है, इसे 'फाइब्रोमा' कहते हैं। कैंसरकारक होने पर इसे 'फाइब्रोसारकोमा' कहते हैं। गर्भावस्था में बच्चे की गर्दन के चारों ओर अंबिलिकल कार्ड से एक लूप व गाँठ (नुचल लूप्स) बन जाती है जिससे उसके मस्तिष्क को क्षति पहुँचती है। साँप के काटने पर उसका विष शरीर के अन्य भागों में न फैले इसके लिए साँप काटे के स्थान से कुछ ऊपर नाड़े आदि से कसकर गाँठ लगा दी जाती थी, परंतु अब दंत-क्षत वाले भाग को चलते पानी से तुरंत धोना सामकर मानते हैं।

गाँठ का हिंदू धर्म के क्रियाकलापों-संस्कारों आदि में भी महत्व है। प्रयागराज में कुंभ के मेले में मैंने एक जनेऊ बेचने वाले को यह आवाज लगाते सुना—'पाँच गाँठ में ब्रह्म बँधे, सात गाँठ में रुद्र'। हिंदू धर्म की सांस्कृतिक विरासत 16 संस्कारों में 10वें संस्कार 'यज्ञोपवीत' या

'उपनयन' संस्कार में, 96 अंगुल का तीन सूत्री (प्रत्येक सूत्र में तीन तंतु) जनेऊ में ब्रह्म, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के प्रतीक की पाँच गाँठें लगा, धारण करना इसका एक प्रमुख क्रियाकलाप है। नारदपुराण के अनुसार, भाद्रपद शुक्ल की सप्तमी को शिव-पार्वती को समर्पित 'आमुक्ताभरण व्रत' (फलसप्तमी व्रत), अष्टमी को ज्येष्ठा नक्षत्र से संयुक्त होने पर (ज्येष्ठा अष्टमी) को महालक्ष्मी व्रत तथा चतुर्दशी को भगवान अनंत को समर्पित 'अनंत व्रत' करते हैं। इनमें क्रमशः सात तंतुओं और सात गाँठें युक्त डोरा, 16 तंतु और 16 गाँठों से युक्त डोरा तथा कपास या रेशम के धागे में 14 गाँठें लगाकर पूजन करते हैं।

गाँठ कहानीकारों व लेखकों से भी अछूती नहीं है। महात्मा बुद्ध से संबंधित एक कथा 'गाँठ' में महात्मा बुद्ध ने एक रुमाल में पाँच गाँठें लगाकर व खोलने का प्रयास कर अपने शिष्यों को यह शिक्षा दी कि गाँठ रूपी 'समस्या' की वजह जाने बगैर उसे दूर करने के प्रयास से समस्या और भी बढ़ सकती है। गोस्वामी तुलसीदास रचित श्रीरामचरितमानस के 'विश्वमोहिनी के स्वयंवर, तथा नारद के मोह भंग' के प्रसंग में हाथ में आती हुई वस्तु/सफलता निकल जाने को बालकांड की यह चौपाई का अंश बखूबी दर्शाता है 'मनि गिरि गई छूटि जनु गाँठी' (बा.का.134.3) अर्थात मानो गाँठ से छूटकर मणि गिर गई हो। उत्तरकांड में काकभुशुन्डि जी के प्रसंग में उल्लेख है कि जीव ईश्वर का अंश है जो अविनाशी, चेतन निर्मल और स्वभाव से ही सुख की राशि है। माया के वशीभूत होने पर जड़ और चेतन में कठिनता से छूटने वाली गाँठ पड़ जाती है जो भगवत्कृपा से ही खुलती है।

प्रेमचंद के प्रसिद्ध उपन्यास 'निर्मला' के एक पात्र रुक्मिणी का संवाद है कि 'तो मैं ही विष की गाँठ हूँ'। लब्धप्रतिष्ठ उपन्यासकार जैनेन्द्र की कृति 'त्यागपत्र' में उनके एक पात्र प्रमोद का संवाद है कि- 'विवाह की ग्रंथि ... वह गाँठ है जो बँधी की खुल नहीं सकती।' देश के सर्वोच्च साहित्यिक सम्मान, 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' से सम्मानित वयोवृद्ध कथाकारा कृष्णा सोबती को 'मित्रों मरजानी' तथा अन्य स्त्री-विषयक उपन्यासों व कथाओं के चलते 'स्त्री मन की गाँठें खोलने वाली कथाकार' के रूप में प्रतिष्ठित है।

पुरुष, विशेषकर ब्राह्मण, अपनी शिखा के बालों में गाँठ लगाकर रखते हैं। इस विषय में चाणक्य से संबंधित एक कथा मशहूर है। राजा धनानंद से अपमानित होकर उन्होंने अपनी शिखा की गाँठ खोलकर शपथ ली कि जब तक वे नंदवंश का अंत नहीं कर देंगे, शिखा नहीं बाँधेंगे और उन्होंने अपनी शपथ को पूर्ण किया।

फाँसी के सजायाफ्ता मुजरिम को फाँसी देने के लिए रस्सी में एक विशेष प्रकार की गाँठ लगाई जाती है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से गाँठ एक साधारण बंद वक्र (सिंपल क्लोज्ड कर्व) है। 'नॉट थियरि' में गाँठों के अवयवों का गणितीय अध्ययन किया जाता है। गाँठों का प्रयोग जापानी कागज कला, ओरिगैमी में भी किया जाता है। विकीपीडिया के लेख 'लिस्ट ऑफ नाट्स' में अनेक प्रकार की गाँठों का वर्णन है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'गाँठ' हमारे जीवन से संबंधित अनेक कार्यों को संपादित करने में एवं उपयोगी वस्तुओं, वस्त्र-आभूषण, हस्त-शिल्प, परिवहन माध्यमों, आवश्यक कागजात तथा भंडारघरों में विभिन्न वस्तुएँ भी गाँठ बाँधकर सुरक्षित रखने में प्रयुक्त होती हैं। हमारे वस्त्रों, जूतों, आभूषण बनाने में भी महत्वपूर्ण है। शरीर में रोगों जैसे, रसौली, कैंसर, टीबी, इत्यादि में लाक्षणिक रूप से उपस्थित है। 'वर्षगाँठ' हमारे जीवन में हर्षोल्लास लाता है। गाँठ का प्रतीकात्मक रूप से प्रयोग हमारे साहित्यकारों ने अपने दोहों, कथाओं तथा उपन्यासों में बखूबी किया है। इतना सबके बाद भी हम सबकी चिर-परिचित 'गाँठ' आजकल कुछ उदास है क्योंकि इसका स्थान प्लास्टिक, हुक्स तथा वेल्क्रो लेते जा रहे हैं। लेकिन फिर भी बहुआयामी, बहुपयोगी 'गाँठ', हमारे जीवन को सुगम बनाती है।

पाषाण के प्राण

यादव बाबू के डेढ़ वर्ष के बेटे का बुखार महीने भर में भी जब न छूटा तो होम्योपैथ डॉक्टर ने कहा, "मुझे कुछ संदेह हो रहा है, एक्सरे करवा लें।" कम पैसे लगेंगे, अतः होम्योपैथी इलाज करा रहे थे। डॉक्टर की बात से उनके माथे पर वज्र पड़ गया—पहले तो रोग के कारण, दूसरे खर्च के कारण।

पर उपाय क्या था? इतने दिनों बाद तो बेटा पैदा हुआ। जान लगाकर भी उसे बचाना होगा। मगर महीने के अंत में एक्सरे के पैसे कहाँ से लाएँ? अस्पताल के लिए रिक्शा किराया तक के पैसे जेब में नहीं। एक्सरे तो दूर। उधार करते-करते थक चुके थे। अब महीने के अंत में कौन देगा? खुद को धिक्कारने लगे। मगर इसका जिम्मेदार कौन है? किसे दोष दें? हालाँकि भगवान के अस्तित्व पर विश्वास नहीं है, मगर रोजमर्रा के दुख-दर्द और अंतहीन कर्तव्यों में इस पर सोचने का समय ही नहीं मिला। फिर भी खुदा को दो-चार गालियाँ दीं, फिर डर के मारे प्रार्थना करने लगे—हे भगवान! यही विचार है? दरिद्र बनाया है, उस पर रोग देकर मजाक उड़ा रहे हो?

एक हफ्ते में सात दिन हैं। दफ्तर से लिखवाकर फ्री एक्सरे करा सकते थे। मगर सरकार की धीर-मंथर गति के भरोसे रोग बैठा नहीं रहेगा। सात दिन में पता नहीं क्या से क्या हो जाए? एक बार सोचा पड़ोसी कच्छी सुनार पैसे वाला है। कुछ दिन पहले जरा-सी बात पर तू-तू मैं-मैं हो गई। वे अपने बच्चों के गूंह पोंछकर कागज यादव बाबू की बाड़ी में फेंक देते थे। यादव बाबू की पत्नी ने बार-बार आगाह किया। उसने यादव बाबू से कहा, मगर यादव बाबू डरकर कुछ न कहते, खुद उठाकर फेंक देते। पत्नी को कह देते—उन्होंने माफी माँग ली है, भविष्य में सावधानी की बात कही है। पत्नी के आगे झूठ कह देते। पर वह नहीं मानती। एक दिन फिर ऐसे ही मैला कागज पड़ा देख, उसने खुद जाकर प्रतिवाद कर दिया। बात झगड़े की ओर बढ़ने लगी। यादव बाबू किसी तरह सँभाल पाए, लाचार श्रोता बने रहे। अंत में पड़ोसी के नौकर ने बाहर आकर कहा, "माँ जी, क्यों छोटों के मुँह लगती हैं?" जिनकी डाँटी खनखना रही, वे मुँह मोड़ चल दिए। यादव बाबू ने दोनों की ओर देखा। दोनों सिर नीचा कर वहाँ से चले आए। गहरी साँस लेकर कहा—न धनहीन बंधुमध्ये जीवितं।

कहाँ से रुपये आएँ, दिन भर यही फिक्र लगी रही। कोई उपाय न दिखा, शाम को श्री गोपाल जी मंदिर की ओर चल दिए। उन्हें विश्वास हो चाहे न हो, बड़े-बड़े साधु-संत तो कह गए हैं कि भगवान को आतुर होकर पुकारो तो वे वांछा पूरी करते हैं। हाथ-पाँव धो, काफी पुरानी मठे की रेशमी धोती पहन मंदिर गए। मूर्ति की ओर देखकर मन में आतुरता लाने की खूब कोशिश की। पर मन में उलटे तर्क और भगवान के अस्तित्व संबंधी प्रश्न आने लगे। क्यों है भगवान? अगर है, तो क्या आकार है? हमारी आतुरता या भावुकता से उनके अस्तित्व के बारे में जो विश्वास पैदा होता है, उसकी सत्यता के बारे

वामाचरण मित्र

(1915-1975)

गहन चिंतन और जीवन-प्रेमी स्रष्टा के रूप में स्वातंत्र्योत्तर ओड़िया कथा साहित्य में वामाचरण मित्र का उल्लेखनीय योगदान है। इनकी कहानियों में लोकजीवन के तत्त्व, दर्शन, मानवीय करुणा और आनंद-विषाद की रसघन अभिव्यक्ति है। सन् 1950 में इनकी पहली कहानी 'श्रीरियमल' प्रकाशित हुई।

में और कोई प्रमाण है, पागल ही ईश्वर को पैदा करता है, पर उसका यह ज्ञान हास्यास्पद है। हमारी भावुकता ही हास्यास्पद नहीं? सब कहते हैं विश्वास से कृष्ण मिलते हैं, तर्क से नहीं। विश्वास पर इतना जोर क्यों दिया गया है? दो-दो मिलकर चार होते हैं कोई तो नहीं कहता कि विश्वास करने से ही ऐसा जानोगे। एक बड़े मनोवैज्ञानिक की बात याद आई। उन्होंने भगवान पर विश्वास करने के सात कारण गिनाए हैं—अमर होने की तीव्र इच्छा, अधिकार पाने की तीव्र इच्छा, प्राकृतिक आपदा से डर। इन बातों में यादव बाबू बेटे की बात भूल गए। याद आने पर फिर आतुरता लाने की कोशिश करने लगे।

बचपन में माँ गजनिस्तारण स्तुति बोला करतीं, वे रो पड़ते। कुंभीर तब हाथी को 'पकड़कर वापी में खींच ले गया, जंतु ने पकड़े पाँव चार दाँतों से खींच लिया। कहा प्राण अब लेंगे नीच!...' उनके नयन छलछला गए। हाथी को कुंभीर से निस्तार का उपाय न दिखा—

यह विचारता मन ही मन में
जब विचरण करता था वन में।।
रात सिंह पर्वत पर थी जब
खूब शोर किया था उसने तब।।
मुनियों ने तब बहुत कहा
विपत भावग्राही बने सहाय।।
यादकर मन में वहीं
पद्ममूल हाथ में लिया।।
पुकारा हे आदिमूल!
रक्षा करो देवकीनंदन, मधुसूदन।।

यादव बाबू को कोई रोक नहीं पाते, माँ की गोद में मुँह छुपाकर रो पड़ते। माँ पीठ पर हाथ फिराते-फिराते करुण स्वर में गज निस्तारण स्तोत्र बोलती जातीं। आज वही बात याद आ रही थी। किसी तरह आतुर होकर पुकार न सके। उनका ज्ञान माने स्वर रोक रहा था। अधीर होकर कहा, "हे भगवान। पंडितों ने कहा है कि विद्या ऐसा धन है जो चोर चोरी नहीं कर सकता। मुझे यह धन नहीं चाहिए। निकाल लो यह धन, वापस कर दो बचपन का विश्वास, आतुरता।" कोई फल नहीं हुआ। अंत में खीझकर उस मूर्ति की ओर देखा-आतुरता नहीं आई, "पर मैं आतुर हूँ, इसमें तो संदेह नहीं। देखें कितने अंतर्यामी हो। भावग्राही हो।"

पर अगले दिन सुबह भगवान की भावग्राहिता पर निर्भर न रह सके। सुबह हाकिम के द्वार पहुँचे उधार के लिए। कुछ समय बाद हाकिम बाहर निकले, उसे अचकचाकर देखा। कहा, "देता हूँ, पर याद रखो, जिसमें पोषण की क्षमा नहीं, संतान पैदा करने का उसे अधिकार नहीं।"

यादव बाबू ने बात हजम कर रुपये ले लिए। रुपये से जो आनंद मिला, उसमें हाकिम के वाक्यबाण का पता न चला।

बेटे का एक्सरे हो गया। डॉक्टर ने फोटो देख एक पन्ने की दवा, पथ्य आदि लिख दिए, "ये निहायत जरूरी हैं। एक बात और, एक अच्छा थर्मामीटर खरीदना। ज्यादा नहीं, सिर्फ साढ़े चार रुपये में। रोज दोनों वक्त बुखार देख खाते में नोट करना।"

डॉक्टर रुपये लेकर चला गया। कागज को यादव बाबू सूने-सूने देखते रहे। यादव पत्नी गहने लिए खड़ी-खड़ी कह उठी, "चिंता न करो। बेटा ठीक रहे, बच जाए, बस सब ठीक हो जाएगा।" यादव बाबू ने एक बार पत्नी को देखा, फिर वह लेकर चले गए।

इलाज चला। डॉक्टर के कहे मुताबिक थर्मामीटर भी आया। सुबह खुद नापकर खाते में लिखते। दोपहर बाद दफ्तर जाने में देर होती तब पत्नी ज्वर देखती।

दो दिन बाद दफ्तर से लौटे तो पता चला कि थर्मामीटर टूट गया। कुछ बोले नहीं। बेटे को लाड़कर कहा, "अरे बाबू! तूने तोड़

दिया! पैसे कहाँ से लाऊँगा खरीदने के लिए? गहने गिरवी रखकर जो पैसे लाया उसमें सौ अभी हैं। खैर पैसों की चिंता नहीं है फिलहाल।"

अगले दिन सुबह बुखार देखा, बेटा थर्मामीटर काँख में रख हँसने लगा। हाथ छिटक दिया। इसके लिए वे तैयार न थे। छूट गया, और टूट गया। बेटा हँस रहा था। पिता को कितने अर्थसंकट में डाल दिया, वह नहीं जानता। यादव बाबू हलकी-सी साँस लेकर हँस पड़े। पृथ्वी की माध्याकर्षण शक्ति भी गरीबों का उपहास करने की ताक में थी।

> "नया थर्मामीटर लेकर लौटे। मगर बात उन्हें ठीक न लगी। मेरी तरह कोई और अभागी होगा, तो बेचारा छटपटाएगा! क्यों कोई और ठगा जाएगा? मन-ही-मन बेचैन हो उठे। आँखें छलछला आईं। अपना खराब थर्मामीटर वापस ले आए तथा एक और खरीद लाए।"

किसी को कुछ नहीं कहा, बक्से से साढ़े चार रुपये लेकर बाजार गए, तुरंत थर्मामीटर ले आए। लौटकर ज्वर मापकर लिखा। पत्नी ने कहा, "खूब सावधानी से बुखार देखना। इतना टूटने पर कहाँ से लाएँगे?"

मगर जितना सावधान हों, कुछ दिन बाद फिर टूट गया। दफ्तर से लौटकर सुना तो यादव बाबू के माथे पर मानो वज्रपात हो गया। गुस्से में, मान में, हताशा में भरी थाली पत्नी की ओर फेंक दी, बेटे को थप्पड़ लगा दी। हंगामा मच गया। 'मेरे बेटे को पीटा', पत्नी फफककर रो उठी। यादव बाबू सिर पर हाथ रखकर बैठ गए। उस दिन सबका खाना-पीना बंद।

अगले दिन दफ्तर में छुट्टी की दरखास्त भेज दी।..."मैं दिखाता हूँ कि कैसे सावधानी से बच्चों का ज्वर देखा जाता है।" शाम को पत्नी को बुलाकर कहा, "मैं बैठा हूँ, तुम देखो।" पत्नी ने गंभीर भाव से बेटे को गोद में बिठाया, काँख में थर्मामीटर रखा। निकालकर लालटेन के पास लिया।

यादव बाबू चीखे, "अरे! ये क्या, लालटेन के ताप में पारा चढ़ जाएगा।"

पत्नी ने कहा, "हमें सीखने न दोगे? लालटेन से पारा नहीं उठता है। ये देखो।"

यह कहकर पारे की तरफ लालटेन को लगा दिया। देखते-देखते पारा आनंद में चढ़ते हुए सीमा पार कर गया। घबराकर हटा लिया। फिर बेटे की काँख में लगा दिया। एक मिनट बाद निकालकर देखा। देखते-देखते वह नीचे खिसकने लगा।

यादव बाबू रुआँसे हो गए। ये क्या किया। खराब कर दिया।

पत्नी ने झाड़कर फिर लगाया। निकालकर देखा तो फिर तेजी से नीचे गिर रहा है।

यादव बाबू विषमता की हँसी में गा रहे—

उड़ि जाउछि लोटणि पारा।
दुनिया रे लागिछि धरा परा।।

थर्मामीटर लेकर दुकान गए। वहीं से तो दवा वगैरह खरीदा करते हैं। पहले दुकानदार से कहा कि खराब थर्मामीटर दे दिया है। मगर दुकानदार ने कड़ा प्रतिवाद किया तो यादव बाबू ने सच कह दिया! दुकानदार ने उनकी करुण कहानी सुनकर दयावश कहा—ठीक है इसे रख जाएँ। किसी और को बेच देंगे, मगर बिक न सके तो दाम आपको देने होंगे। फिलहाल दूसरा ले जाएँ।

नया थर्मामीटर लेकर लौटे। मगर बात उन्हें ठीक न लगी। मेरी तरह कोई और अभागी होगा, तो बेचारा छटपटाएगा! क्यों कोई और ठगा जाएगा? मन-ही-मन बेचैन हो उठे। आँखें छलछला आईं। अपना खराब थर्मामीटर वापस ले आए तथा एक और खरीद लाए।

सिर पर से एक बड़ा बोझ हट गया। राह में गोपालजी मंदिर जाकर उनकी मूर्ति को देखते रहे। उन्हें लगा कि पत्थर की यह मूर्ति प्राणवंत हो उठी है। मूर्ति को देखकर आतुर हो कहने लगे, "भगवान, मुझे धन, मान न दो। पर अशाधु न बनाओ।"

आँखों से पानी झरता रहा। पर मन में अपूर्व आनंद की सिहरन भर रही थी।

(प्रसून पांडेय द्वारा संपादित, शंकर लाल पुरोहित द्वारा अनूदित व राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा प्रकाशित 'गोदावरीश मिश्र की कहानियाँ' पुस्तक से साभार)

• • •

आओ भारतीय भाषाएँ सीखें

हिंदी	संस्कृतम्	पंजाबी	उर्दू	कश्मीरी	सिंधी	मराठी	कोंकणी	गुजराती	नेपाली	बांग्ला
कार्य-पालिका	कार्यपालिका	कारज-पालिका	इंतेज़ामिया	इंतज़ामिया	कार्यपालिका	कार्यपालिका	कार्यपालिका	कार्यपालिका	कार्यपालिका	[illegible]
राष्ट्रपति	राष्ट्रपतिः	राशटरपती	सदरे-मम्लकत (राष्ट्रपति)	राष्ट्रपति, सदरि जमहूरिया	राष्ट्रपती	राष्ट्रपती	राष्ट्रपती	राष्ट्रपति	राष्ट्रपति	राष्ट्रपति
उपराष्ट्रपति	उपराष्ट्रपतिः	उपराशटरपती	नायब सद्रे-मम्लकत	नायिबि-सदुर, उपराष्ट्रपती	उप-राष्ट्रपती	उपराष्ट्रपती	उपराष्ट्रपती	उपराष्ट्रपति	उपराष्ट्रपति	उपराष्ट्रपति
प्रधानमंत्री	प्रधानमन्त्री	प्रधान मंतरी	वज़ीरेआज़म (प्रधान मंत्री)	वज़ीरि आज़म, प्रधान मंत्री	वज़ीर ऐज़म, प्रधान मंत्री	पंतप्रधान	प्रधान मंत्री	वडाप्रधान	प्रधानमन्त्री	प्रधानमंत्री
राज्यपाल	राज्यपालः	राजपाल	गवर्नर	गवरनर	गवर्नर, राज्यपाल	राज्यपाल	राज्यपाल	राज्यपाल	राज्यपाल	राज्यपाल (पाल)
उपराज्यपाल	उपराज्यपालः	उपराजपाल	लैफ्टीनेन्ट गवर्नर	लैफ्टिनेंट-गवरनर	उप-राज्यपालु, लैफ्टीनेन्ट गवर्नरु	उपराज्यपाल	उपराज्यपाल	उपराज्यपाल	उपराज्यपाल	उपराज्यपाल
मुख्यमंत्री	मुख्यमन्त्री	मुख्य मंतरी	वज़ीरेआला	चीफ़ वज़ीर, वज़ीरेआला	वडो वज़ीर, मुख्य मंत्री	मुख्यमंत्री	मुख्यमंत्री, मुखेल मंत्री	मुख्यप्रधान	मुख्यमंत्री	मुख्यमंत्री (राज्य)
मंत्री	मन्त्री	मंतरी, वज़ीर	वज़ीर	वज़ीर	वज़ीरु, मंत्री	मंत्री	मंत्री	प्रधान	मन्त्री	मंत्री
मंत्रिमंडल	मन्त्रिमण्डलम्	वज़ारत, मंतरी मंडल, कबीना	कबीना	कैबनिट वज़ारती-कौंसल	मंत्रीमंडलु, वज़ीरात	मंत्रिमंडळ	मंत्री मंडळ	प्रधानमंडळ	मन्त्रिपरिषद	मंत्रिमंडल, मंत्रिसभा
आयुक्त	आयुक्तः	कमिशनर	कमिश्नर	कमिशनर, सदर, स्युक्त	कमिश्नरु, आयुक्तु	आयुक्त	आयुक्त	कमिश्नर, सरसूबो, अमलदार	आयुक्त	आयुक्त, कमिशनर कर्माध्यक्ष
महापौर	महापौरः	मेयर	मेयर	मेयर, मीर	मेयरु, महापौरु	महापौर	मेयर	मेयर, नगरपति	महापौर, मेयर	पौरपति, मेयर पौर प्रधान
नगर निगम	नगरनिगमः	नगर निगम	म्युनिसिपल कार्पोरेशन, बलदिया	म्यूनसपल-कारपोरेशन	म्युनिसिपिल कार्पोरेशन, नगर निगम	महानगर पालिका, म्युनिसिपल कॉर्पोरेशन	महानगर-पालिका	महानगर-पालिका	नगर निगम	निगम, पौरसभा कार्पोरेशन

असमिया	मणिपुरी	ओड़िआ	तेलुगू	तमिल	मलयालम	कन्नड़	डोगरी	संताली	मैथिली	बोड़ो
कार्यपालिका	थक्कपुना	कार्य्यबाही	कार्यपालिक	सेय्द् कुलु	एक्सिक्यूटीवु	कार्यांग	इंतजामिया	कार्यपालिका	कार्य-पालिका	मावफुंगिरि
राष्ट्रपति	राष्ट्रपति	राष्ट्रपति	राष्ट्रपति	कुडियरसुत्तलैवर्	राष्ट्रपति	राष्ट्रपति	राश्टरपती	राष्ट्रपति, मुखया	राष्ट्रपति	हादोरगिरि, हासुंगिरि
उपराष्ट्रपति	उपराष्ट्रपति	उपराष्ट्रपति	उपराष्ट्रपति	कुडियरसुत् तुणैत् तलैवर	उपराष्ट्रपति	उप राष्ट्रपति	उपराश्टरपति	उपराष्ट्रपति	उपराष्ट्रपति	लेकाइ हाद रगिरि
प्रधानमंत्री	प्रधान मंत्री	प्रधान मंत्री	प्रधान मंत्रि	पिरदम मंत्तिरि, पिरदमर्	प्रधान मंत्रि	प्रधान मंत्रि	प्रधान मैंत्तरी	मारां मन्त्री	प्रधान मंत्री	गाह्राइ मन्थ्रि
राज्यपाल	गवर्नर, राज्यपाल	राज्यपाल	गवर्नरु	आळुनर्	गवर्णर्	राज्यपाल	राज्यपाल	राजपाल	राज्यपाल	राज्यो बैगिरि
उपराज्यपाल	उपराज्यपाल	उपराज्यपाल	उपगवर्नरु	लेफ्टिनन्ट् गवर्णर्	लफ्टनन्ट् गवर्णर	उप राज्यपाल	उपराज्यपाल	उपराज्यपाल	उपराज्यपाल	लेकाइ राज्यो बैगिरि
मुख्यमंत्री	मुख्य मंत्री	मुख्य मंत्री	मुख्यमंत्रि	मुदलमैच्चर्	मुख्य मंत्रि	मुख्य मंत्रि	मुक्ख मैंत्तरी	मुखया मन्त्री	मुख्यमंत्री	गिबि मन्थ्रि
मंत्री	मंत्री	मंत्री	मंत्रि	अमैच्चर्	मंत्रि, कार्यदर्शि	मंत्रि, सचिव	मैंत्तरी	मन्त्री	मंत्री	मन्थ्रि
मंत्रीमंडल, मंत्रीसभा	मंत्रि-मंडोल	मंत्रि-मंडल	मंत्रि मंडलि	अमैच्चरवै	मंत्रि-सभा	मंत्रिमंडल, संपुट	मैंत्तरी मंडल	मन्त्री मन्डल, मन्त्री गोंठवा	मंत्रिमंडल	मन्थ्रि हान्जा
आयुक्त	कमीश्नार	आयुक्त, अध्यक्ष	कमीशनरु	कमिशनर्/ आणैयर	कमीषणर्	कमीशनरु, आयुक्त	कमिशनर	कमिशनार	आयुक्त	मावखुंगिरि, आयुक्त
महापौर	मेयोर	नगरपाल	मेयरु	मेयर्/मानगरा-ट्चित् तलैवर्	मेयर, महापौरन्	महापौर, मेयर	मेयर	मेयर	महापौर	नोगोर गाहाइ
पौर निगम, नगर निगम	म्युनिसिपाल कार्पोरेश्न	पौर प्रतिष्ठान	कार्पोरेषनु	मानगराट्चि	कोर्परेषन	महानगर पालिके कार्पोरेशन्	नगरनिगम	नागर निगम	नगर निगम, महानगर पालिका	नोगोर निगम

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा प्रकाशित भारतीय भाषा कोश से साभार)

विश्व पटल पर हिंदी शिक्षण की संभावनाएँ एवं नवाचार

जब रूसी भाषा वैज्ञानिक मिखाइल बाख्तिन ने कहा कि "भाषा ही समाज है।" तो अनायास ही मेरी मनःदृष्टि भोलानाथ तिवारी के भाषा ग्रंथ की उन पंक्तियों पर जा रुकी जिसमें उन्होंने स्वीकार किया है कि "मानव समाज का मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक अथवा भौगोलिक परिवर्तन भाषा के स्वरूप को भी एक नया मोड़ देता चलता है" अर्थात मानव का स्थान परिवर्तन, जो उसकी आवश्यकताओं और बाध्यताओं से चुनौतियों को जन्म देता है और मानव इस प्रक्रिया को बोधगम्यता प्रदान करने हेतु तलाश करता है संभावनाओं की; जो अत्यंत आवश्यक भी है।

दरअसल, चुनौतियाँ एवं संभावनाओं को मैं दो विरोधी पक्षों के रूप में देखने की अपेक्षा परस्पर पूरक कड़ियों के रूप में देखता हूँ। चुनौतियों के गर्भ में ही समाधान की संभावना का बीज मैंने अंकुरित होते देखा है। इस दृष्टि से इस आलेख में हमने विश्व पटल पर हिंदी अध्यापन की संभावनाओं पर चर्चा की है।

आज विश्व के लगभग 75 देशों तथा 110 विश्वविद्यालयों/संस्थानों में हिंदी का प्रयोग होता है अथवा उन देशों में हिंदी के अध्ययन-शिक्षण की व्यवस्था भी है। इन देशों को हम तीन दृष्टियों से देख सकते हैं—

प्रथम वर्ग : वे देश जिनकी भारतीय मूल के अप्रवासी नागरिकों की आबादी अपने देश की जनसंख्या में लगभग 40 प्रतिशत या उससे अधिक है।

द्वितीय वर्ग : इस वर्ग में वे देश आते हैं जो हिंदी को विश्व भाषा के रूप में सीखते हैं।

तृतीय वर्ग : वे देश जिनमें हिंदी-उर्दू मातृभाषियों की बड़ी संख्या निवास करती है। इन देशों में भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, भूटान आदि देशों के अप्रवासियों/अनिवासियों की रहने वाली विपुल आबादी संपर्क भाषा के रूप में हिंदी-उर्दू की फिल्में देखती है, गाने सुनती है, टेलीविजन के कार्यक्रम देखती है।

दृष्टि का थोड़ा-सा विस्तार करने पर हम देख सकेंगे कि वैश्विक स्तर पर हिंदी शिक्षण को अग्रलिखित बिंदुओं द्वारा सुगम बनाया जा सकता है—

- विदेशी भाषा के रूप में हिंदी में संलग्न भारतीय एवं भारतेतर प्राध्यापकों को भाषा शिक्षण प्रविधि, साहित्य शिक्षण प्रविधि, हिंदी व्याकरण, हिंदी के सामाजिक एवं सांस्कृतिक संदर्भों से परिचित कराया जाए।
- प्रत्येक देश के शिक्षण स्तर एवं हिंदी प्रशिक्षण के लक्ष्यों एवं उद्देश्यों को ध्यान में रखकर हिंदी शिक्षण के पाठ्यक्रम का

विवेक शर्मा

जन्म : 14 नवंबर, 1993

संप्रति : प्रवक्ता, हिंदी तथा विदेशी भाषा विभाग, सेंट स्टीफन्स कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

लेखन : समाचार-पत्र, पत्रिकाओं इत्यादि में निरंतर लेखन, आकाशवाणी (विदेश प्रसारण सेवा) से अनेक रेडियो कार्यक्रम प्रसारित।

संपर्क : मोबाइल— 7292015656

ईमेल— viveksharma141193@gmail.com

निर्माण करना चाहिए। पाठ्यक्रम इतना व्यापक एवं स्पष्ट होना चाहिए जिसमें शिक्षण एवं अध्येता दोनों का मार्गदर्शन हो सके।

- विदेशों में हिंदी शिक्षण करने वाले शिक्षकों के लिए शिक्षण-प्रशिक्षण एवं नवीन पाठ्यक्रमों का आयोजन एवं संचालन होना चाहिए।
- विदेशी अध्येताओं के भाषा शिक्षण के उद्देश्य एवं लक्ष्य को ध्यान में रखकर आवृत्ति के आधार पर शिक्षकों द्वारा आधारभूत शब्दावली का निर्माण किया जाना चाहिए।

"कहते हैं प्यास गहरी हो तो आदमी कुआँ खोदकर पानी निकाल लेता है। कुछ ऐसे ही प्रयास वैश्विक स्तर पर हिंदी अध्यापन को लेकर चल रहे हैं किंतु यह वक्त की एक बड़ी जरूरत है कि विश्व में विदेशी भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण से संबंधित इन सभी बातों के क्रियान्वयन के लिए विदेश मंत्रालय के अतिरिक्त भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय (वर्धा) और विश्व हिंदी सचिवालय (मॉरिशस) अपने उत्तरदायित्व का वहन करे तथा प्रभावी परियोजनाएँ बनाए, ताकि हम हिंदीभाषियों को मातृभाषा के प्रति अपने उत्तरदायित्वों के वहन हेतु विदेशी सरजमीं से यह सीख न लेनी पड़े कि—"हिंदी 21वीं सदी की भाषा बन चुकी है अतः संपूर्ण विश्व में इसके प्रयोग को व्यावहारिक बनाए जाने की आवश्यकता है।""

देवनागरी लेखन तथा हिंदी वर्तनी व्यवस्था :

- देवनागरी लिपि के लिपि चिह्नों का विश्लेषण।
- एक लिपि चिह्न से रूपांतरित होने वाले अन्य लिपि चिह्नों का क्रमिक विस्तार।
- मात्राओं से युक्त व्यंजन एवं संयुक्त व्यंजन, हिंदी वर्तनी की विशेषताओं के अनुरूप वर्णों से बचने वाले शब्दों के अनुप्रयोगात्मक पाठ!

वास्तविक भाषा व्यवहार को आधार बनाकर व्यावहारिक हिंदी संरचना :

- ध्वनि संरचना, शब्द संरचना तथा पदबंध संरचना के अनुप्रयोगात्मक पाठों का निर्माण। समस्त सामग्री का निर्माण अभिक्रमित रूप में! शिक्षार्थी के अधिगम की पुष्टि के लिए प्रत्येक बिंदु पर विभिन्न अभ्यासों की योजना।
- हिंदी साहित्य का अध्ययन करने वाले विदेशी अध्येताओं के लिए हिंदी साहित्य के इतिहास का निर्माण करते समय प्रत्येक काल की मुख्य धाराओं, प्रमुख प्रवृत्तियों, प्रसिद्ध रचनाकारों तथा उनकी रचनाओं का विवरण भारत के हिंदी समाज के उस काल की सांस्कृतिक, सामाजिक एवं दार्शनिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर प्रस्तुत करना चाहिए।
- कंप्यूटर साधित हिंदी भाषा शिक्षण की प्रभूत सामग्री के निर्माण के लिए ऐसी परिचालन प्रणाली का विकास जिससे हिंदी में काम करना अधिक सुविधाजनक बन सके! हिंदी इंटरफेस सभी प्लेटफॉर्म्स पर उपलब्ध हो, जिससे सारे आदेश उपकरण, पट्टियाँ, संवाद कक्ष तथा मदद हिंदी में उपलब्ध हो सकें।
- विदेशी अध्येताओं को ध्यान में रखकर 'स्पेल चैकर' तथा 'ऑन-लाइन शब्दकोश' की सुविधा का विकास किया जाना चाहिए।
- 'लीला प्रबोध' के काम को आगे बढ़ाना। जीवन के विविध प्रयोजनों की सिद्धि के लिए हिंदी में स्वयं शिक्षण पैकेज की दिशा में प्रगति एवं विकास किया जाना वक्त की जरूरत है।
- महात्मा गांधी हिंदी विश्वविद्यालय (वर्धा), केंद्रीय हिंदी संस्थान (आगरा) आदि संस्थाओं को हिंदी में ऐसे पोर्टल विकसित करने चाहिए जिससे कोई भी विदेशी अध्येता हिंदी से संबंधित प्रत्येक जानकारी प्राप्त कर सके। लाइनेक्स और ओपन ग्रुप विकसित करना चाहिए जो हिंदी भाषा की ध्वनि, लिपि, शब्द, भाषा प्रयोग आदि के संबंध में हिंदी में अपने विचार, हिंदी में अभिलेख एवं ई-मेल अधिकाधिक भेज सके, विभिन्न विषयों पर अपने विचार प्रस्तुत कर सके, प्रस्तुत विचार-सामग्री में संशोधन कर सके। हिंदी में सॉफ्टवेयर्स निर्मिति का कार्य तीव्र गति से होना चाहिए। हिंदी में ज्ञान-विज्ञान की प्रत्येक शाखा के प्रत्येक विषय पर प्रभूत सामग्री कंप्यूटर पर उपलब्ध होनी चाहिए।

कहते हैं प्यास गहरी हो तो आदमी कुआँ खोदकर पानी निकाल लेता है। कुछ ऐसे ही प्रयास वैश्विक स्तर पर हिंदी अध्यापन को लेकर चल रहे हैं किंतु यह वक्त की एक बड़ी जरूरत है कि विश्व में विदेशी भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण से संबंधित इन सभी बातों के क्रियान्वयन के लिए विदेश मंत्रालय के अतिरिक्त भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय (वर्धा) और विश्व हिंदी सचिवालय (मॉरिशस) अपने उत्तरदायित्व का वहन करे तथा प्रभावी परियोजनाएँ बनाए, ताकि हम हिंदीभाषियों को मातृभाषा के प्रति अपने उत्तरदायित्वों के वहन हेतु विदेशी सरजमीं से यह सीख न लेनी पड़े कि—"हिंदी 21वीं सदी की भाषा बन चुकी है अतः संपूर्ण विश्व में इसके प्रयोग को व्यावहारिक बनाए जाने की आवश्यकता है।" (जॉर्ज बुश)

इसके विपरीत हमें स्वयं भारतेंदु की इन पंक्तियों को आत्मसात करना चाहिए—

"निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा-ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल।।"

बस्तर में बाल साहित्य और राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

वर्ष 2002 में बाल साहित्य की दो पुस्तकें ('चलो, चलें बस्तर' और 'बस्तर के तीज-त्यौहार') बस्तर संभाग हल्बी साहित्य परिषद द्वारा प्रकाशित की गईं, जिनके विषय में बस्तर के साहित्य ऋषि और बस्तर संभाग हल्बी साहित्य परिषद के अध्यक्ष लाला जगदलपुरी जी ने अपने प्रकाशकीय में कहा था, "इससे पहले तक बस्तर पर बाल-लेखन-प्रकाशन का नितांत अभाव था।" इन्हीं पंक्तियों में आगे उन्होंने इन दोनों पुस्तकों के लेखक का नाम लेते हुए जोड़ा था, ".....ने इस अभाव की पूर्ति की है। बातचीत की शैली में इस पुस्तिका के माध्यम से बस्तर संबंधी आवश्यक जानकारियों का आकर्षक विवरण प्रस्तुत किया गया है।"

और संयोग देखिए कि उन्हीं लाला जगदलपुरी जी से मिलने राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत (नई दिल्ली) में कार्यरत हिंदी संपादक पंकज चतुर्वेदी जी और मैं जब 11 मार्च, 2013 को जगदलपुर जा रहे होते हैं कि वहीं रास्ते में हल्बी के अन्यतम कवि श्री सोनसिंह पुजारी जी के घर पर बैठे, उनसे चर्चा के दौरान ही बस्तर की लोक भाषाओं पर बाल साहित्य के संबंध में चर्चा होती है। न्यास की ओर से सुझाव रखा जाता है कि क्यों न प्राथमिक प्रयास के रूप में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा प्रकाशित बाल साहित्य का बस्तर की किसी एक लोक भाषा में अनुवाद का कार्य हाथ में लिया जाए। और फिर यह सुझाव केवल सुझाव नहीं रह जाता, बल्कि ठोस रूप ले लेता है। न्यास ने न केवल इसी एक परियोजना पर काम किया, बल्कि इसके बाद लगातार तीन और परियोजनाओं की परिकल्पना की और उन्हें साकार भी किया। इन सभी परियोजनाओं से प्रतिभागियों के अलावा मैं भी किसी-न-किसी रूप में जुड़ा रहा। मुझे इस बात का गौरव है और प्रसन्नता भी। जगदलपुर के साथी रुद्रनारायण पाणिग्राही और विक्रम सोनी भी स्थानीय संयोजक के रूप में आरंभ से न केवल जुड़े रहे, बल्कि पूरी तरह सक्रिय बने रहे। इसी तरह मार्च 2016 में काँकेर में आयोजित पुस्तक-विमोचन समारोह के स्थानीय संयोजक के रूप में काँकेर के साथी सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव भी न्यास से जुड़े।

हरिहर वैष्णव

जन्म : 19 जनवरी, 1955, दंतेवाड़ा (बस्तर-छ.ग.)

कृति : संपूर्ण लेखन-कर्म बस्तर पर केंद्रित। कुल 25 पुस्तकें प्रकाशित। कुछ प्रकाशनाधीन। हिंदी के साथ-साथ बस्तर की भाषाओं हल्बी, भतरी, बस्तरी और छत्तीसगढ़ी में भी समान लेखन। सांस्कृतिक आदान-प्रदान कार्यक्रम के तहत विभिन्न देशों में प्रवास—ऑस्ट्रेलिया-1991, स्विट्ज़रलैंड-2000 और इटली-2002। बस्तर की भाषा हल्बी में 5 एनीमेशन फिल्मों का स्कॉटलैंड की संस्था 'लेट हाईलैंड एनीमेशन' के साथ मिलकर निर्माण।

पुरस्कार : प्रमुख सम्मान—छत्तीसगढ़ हिंदी साहित्य परिषद् : 'उमेश शर्मा साहित्य सम्मान, 2009', दुष्यंत कुमार स्मारक संग्रहालय : 'आंचलिक साहित्यकार सम्मान 2009', छत्तीसगढ़ राज्य अलंकरण 'पं. सुंदरलाल शर्मा साहित्य सम्मान 2015', 'वेरियर एल्विन प्रतिष्ठा अलंकरण 2015', साहित्य अकादेमी : 'भाषा सम्मान 2015'।

संपर्क : मोबाइल— 7697174308

मुझे लगता है कि यहाँ उस प्रसंग का ज़िक्र अवश्य ही होना चाहिए जिसके चलते बस्तर की विभिन्न लोक भाषाओं में बाल-साहित्य पर इतने बड़े पैमाने पर सार्थक काम हुआ और आगे भी होते रहने की आशा है। तो चलिए, संक्षेप में उस प्रसंग का ज़िक्र हो ही जाए। वह प्रसंग इस तरह है—

11 फरवरी, 2013। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत (नई दिल्ली) की ओर से ई-मेल पर एक संदेश आता है। संदेश सुखद और आश्चर्यचकित कर देने वाला है। इस संदेश में सूचना मिलती है कि लाला जी और न्यास के संयुक्त प्रयास से 'बस्तर की लोक कथाएँ' पुस्तक का प्रकाशन हो गया है। और न्यास चाहता है कि मार्च महीने के किसी एक दिन एकदिवसीय आदिवासी साहित्य उत्सव का आयोजन जगदलपुर में किया जाए। इस आयोजन में 'बस्तर की लोक कथाएँ' तथा हरिराम मीणा जी की पुस्तक 'आदिवासी दुनिया' का लोकार्पण हो। इसके लिए शहर के किसी स्थान से सौ-पचास लिखने-पढ़ने वाले लोग लाला जी के दरवाजे तक चलें। वहाँ उन्हें पुस्तकें भेंटकर उनका सम्मान किया जाए और वहीं उन पुस्तकों पर विमर्श और रचना-पाठ का दिन भर का आयोजन हो। इस कार्यक्रम में यदि किसी को बाहर से बुलाना हो तो उसका तथा स्थानीय आयोजन का समस्त व्यय राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा वहन किया जाएगा। न्यास का यह संदेश पढ़कर मैंने तत्काल जगदलपुर-निवासी एक कवि एवं रंगकर्मी मित्र को फोन लगाया। उनसे सारी बातें हुईं। वे आयोजन के संयोजन एवं प्रबंध हेतु सहमत हो गए। फिर इसके बाद मैंने लाला जी के अनुज श्री के.एल. श्रीवास्तव जी को फोन लगाया ताकि लाला जी की वर्तमान स्थिति की जानकारी मिल जाए और उस हिसाब से कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार हो। फोन लगाने पर श्रीवास्तव जी ने बताया कि लाला जी की शारीरिक और मानसिक स्थिति ठीक नहीं है। इसीलिए इस आयोजन में उन्हें सम्मिलित करना संभव नहीं हो पाएगा। मेरे लिए यह सूचना हृदयविदारक थी। मैंने विवशता में न्यास को यह सूचना दे दी। न्यास लाला जी के प्रति सम्मान का भाव रखता रहा है और इसी भावना के चलते न्यास यह कार्यक्रम जगदलपुर में आयोजित करना चाहता था। बहरहाल। अंततः तय यह हुआ कि यह कार्यक्रम अब जगदलपुर की बजाय कोंडागाँव में हो। और इस तरह 10 मार्च को यह कार्यक्रम

कोंडागाँव में आयोजित हुआ। और इसके अगले दिन यानी 11 मार्च को हम जगदलपुर गए थे लाला जी से मिलने। बहरहाल।

जैसा कि पहले ही उल्लेख हो चुका है, न्यास ने सबसे पहले भतरी में अनुवाद कार्यशाला करने का मन बनाया। चूँकि जगदलपुर और इसके आस-पास का पूर्वी इलाका ही भतरी-भाषी है, अतः इसके लिए हमने जगदलपुर के साथियों से संपर्क किया और कोंडागाँव में कार्यशाला आयोजित करने की बात कही, किंतु वहाँ के अधिसंख्य साथी जगदलपुर में ही कार्यशाला रखने के पक्ष में थे। इस तरह यह त्रिदिवसीय कार्यशाला जगदलपुर में जुलाई 2013 में आयोजित हुई। इस कार्यशाला में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा प्रकाशित हिंदी की निम्न पुस्तकों का भतरी में अनुवाद संपन्न हुआ : 1. सारी दुनिया-प्यारी दुनिया (भतरी : सबू सँवसार मयार सँवसार, अनुवादक : शम्भूनाथ कश्यप), 2. खरगोश और कछुए की दौड़ (भतरी : समाहा आवरी कछिमर दाउ-भिता, अनुवादक : रुद्र नारायण पाणिग्राही), 3. तितली और उम्मीदों का संगीत (भतरी : फिलफिली आवरी आसार गीत-गोबिंद, अनुवादक : शम्भूनाथ कश्यप), 4. छोटा-सा मोटा-सा लोटा (भतरी : सुरु माहा ठेसोर माहा करोसा, अनुवादक : डॉ. रूपेन्द्र कवि), 5. मोर पंख (भतरी : मँजुर पाखी, अनुवादक : तुलसी राम पाणिग्राही), 6. मुन्नु के सपने (भतरी : मुनुर सपना, अनुवादक : नरेन्द्र पाढ़ी), 7. लाल पतंग और लाडू (भतरी : लाल पतंग आवरी लपकन, अनुवादक : रुद्र नारायण पाणिग्राही), 8. नेवला भी राजा (भतरी : नेवरा बले राजा आय, अनुवादक : डॉ. रूपेन्द्र कवि), 9. हमारा प्यारा मोर (भतरी : आमर मयार मँजुर, अनुवादक : पीताम्बर दास वैष्णव), 10. मीता और उसके जादुई जूते (भतरी : मीता आवरी तार जादु भिती पनही, अनुवादक : तुलसी राम पाणिग्राही), 11. मेरी कहानी (भतरी : मोर कहनी, अनुवादक : पीताम्बर दास वैष्णव)।

इस कार्यशाला की सफलता ने राष्ट्रीय पुस्तक न्यास को और भी उत्साहित किया और केवल एक महीने बाद सितंबर 2013 में बस्तर की ही प्रमुख और बहुसंख्यक लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा 'हल्बी' में भी एक त्रिदिवसीय अनुवाद कार्यशाला जगदलपुर में ही आयोजित की गई, जिसमें बस्तर, कोंडागाँव एवं नारायणपुर जिले के साथी सम्मिलित हुए। इस कार्यशाला में न्यास

द्वारा प्रकाशित हिंदी की निम्न पुस्तकों का हल्बी में अनुवाद किया गया : 1. परियों का खेल (अनुवादक : रुद्र नारायण पाणिग्राही), 2. झाड़ू लगाने वाला राजा (अनुवादक : नरेन्द्र पाढ़ी), 3. राजा जो कंचे खेलता था (अनुवादक : विक्रम कुमार सोनी), 4. चंदा गिनती भूल गया (अनुवादक : विक्रम कुमार सोनी), 5. मेंढक और साँप (अनुवादक : यशवंत गौतम), 6. जंगल के दोस्त (अनुवादक : शिवकुमार पाण्डेय), 7. पूँछ की पूछ (अनुवादक : सुभाष पाण्डेय), 8. नौ नन्हे पक्षी (अनुवादक : शोभा राम नाग), 9. रूपा हाथी (अनुवादक : नरेन्द्र कुमार मण्डल), 10. क्या हुआ? (अनुवादक : कु. वर्षा खुँमर)।

इस कार्यशाला में, जो बस्तर के साहित्य ऋषि लाला जगदलपुरी को समर्पित था, बाल-साहित्य-विशेषज्ञ के रूप में दिल्ली से सुप्रसिद्ध बाल साहित्यकार और 'परिंदे' पत्रिका की संपादक कुसुम लता सिंह जी उपस्थित थीं। इनके साथ ही स्थानीय भाषा के जानकारों के रूप में बाबू थॉमस, बी.एल. झा और शशि पाण्डेय की भी उपस्थिति रही।

> न्यास की ओर से अब अनुवाद से एक कदम और आगे की बात की गई। बस्तर की इन भाषाओं में मौलिक लेखन की ओर रुख किया गया। इसकी खास बात यह थी कि लेखक भी बस्तर के हों, विषय भी बस्तर के और यहाँ तक कि चित्रकार भी बस्तर के ही। रूपरेखा कुछ इस तरह थी कि मूल पुस्तक का तीन अलग-अलग भाषाओं में अनुवाद भी स्थानीय साथी ही प्रस्तुत करें।

ये दोनों कार्यशालाएँ इतनी सफल सिद्ध हुईं कि न्यास का उत्साह कई गुना बढ़ गया। अब बारी थी गोंडी, दोरली और धुरवी लोक भाषाओं की। जनवरी 2014 में इन तीनों भाषाओं में अनुवाद की एक त्रिदिवसीय कार्यशाला जगदलपुर में ही आयोजित की गई, जिसमें दंतेवाड़ा, सुकमा और बस्तर जिलों के साथियों बी.आर. कवासी, बधनू राम मोगामी, जोगाराम कश्यप, दादा जोकाल (चारों गोंडी), कट्टम सीताराम, आस मुकेश, मड़कम साहेब, कोड़े राकेश (चारों दोरली), दुरषन कुमार नाग, शिव कुमार नाग, बुधराम कश्यप और शोभा राम कश्यप (चारों धुरवी) ने सहभागिता दर्ज कराई। इन साथियों में से गोंडी वाले चार साथियों ने क्रमशः उषा जोशी की पुस्तक 'इन्द्रधनुष', अनूप राय की पुस्तक 'जब आए पहिए', कंगसम कैंगलांग की पुस्तक 'जैसे को तैसा' और गीतिका जैन की पुस्तक 'जंगल में धारियाँ' का गोंडी में अनुवाद किया। इसी तरह दोरली वाले चार साथियों ने अशोक दाबर की पुस्तक 'फल और मधुमक्खी', दिलीप कुमार बरुआ की पुस्तक 'धनेश के बच्चे ने उड़ना सीखा', सुब्रजीत सेनगुप्ता की पुस्तक 'तितली का बचपन' और जयंती मनोकरण की पुस्तक 'कितनी प्यारी है यह दुनिया' को दोरली में अनूदित किया। धुरवी के चार साथियों ने धुरवी में सैयद असद अली की पुस्तक 'गोरा काला', जगदीश जोशी की पुस्तक 'पहेली', का. सेखाराम की पुस्तक 'छोटे पौधे-बड़े पौधे' और रवी परांजपे की पुस्तक 'पानी ही पानी' का अनुवाद किया।

इन कार्यशालाओं की लगातार सफलता ने न केवल न्यास को बल्कि बस्तर के सृजनधर्मियों को भी उत्साहित किया। सभी अब न्यास से जुड़ने को लालायित थे। न्यास की ओर से अब अनुवाद से एक कदम और आगे की बात की गई। बस्तर की इन भाषाओं में मौलिक लेखन की ओर रुख किया गया। इसकी खास बात यह थी कि लेखक भी बस्तर के हों, विषय भी बस्तर के और यहाँ तक कि चित्रकार भी बस्तर के ही। रूपरेखा कुछ इस तरह थी कि मूल पुस्तक का तीन अलग-अलग भाषाओं में अनुवाद भी स्थानीय साथी ही प्रस्तुत करें। जैसे कि मूल गोंडी में लिखी पुस्तक का अनुवाद हल्बी, भतरी और हिंदी में भी प्रस्तुत किया जाए। गजब की कार्ययोजना थी। इस पर काम शुरू किया गया। पहले चरण में गोंडी, हल्बी और भतरी के साथियों से पांडुलिपि माँगी गई। चर्चाएँ की गईं। उन्हें प्रारूप दिया गया ताकि वे उसके हिसाब से पांडुलिपि

तैयार कर सकें। कड़ी मेहनत के बाद लगभग 15-20 पांडुलिपियाँ आईं, जिनमें से 10 का प्रकाशन करना तय किया गया। तय होते ही इन 10 पुस्तकों के अनुवाद भी तैयार करवाए गए। इसके बाद इन पुस्तकों के चित्रांकन के लिए बस्तर के ही लोक चित्रकारों से संपर्क किया गया और मार्च 2014 में एक त्रिदिवसीय चित्रांकन कार्यशाला कोंडागाँव में आयोजित की गई। दो पुस्तकों, घनश्याम सिंह नाग की हल्बी पुस्तक 'मेंढका बिहाव' और अंजनी मरकाम की गोंडी पुस्तक 'पवला उरसनाँद' के चित्र अंत तक संबंधित चित्रकारों द्वारा बनाए नहीं जा सके। फलतः इन दोनों पुस्तकों का प्रकाशन नहीं हो सका। इस कार्यशाला में बाल-साहित्य-विशेषज्ञ के रूप में दिल्ली से सुप्रसिद्ध साहित्यकार और 'परिंदे' पत्रिका की संपादक कुसुम लता सिंह जी ने भी शिरकत की। प्रकाशन के बाद इन पुस्तकों का लोकार्पण एक भव्य कार्यक्रम में काँकेर में 20 मार्च, 2016 को किया गया।

भिन्न सोच के कहानीकार गुलज़ार

नज़्म, ग़ज़ल, कविता, कहानी, संस्मरण, निबंध, फ़िल्म पटकथा आदि विभिन्न विधाओं में साथ-साथ लेखन करने वाले प्रबुद्ध रचनाकार अपनी लेखन कला के जौहर सामान्यतः इनमें से किसी एक में अधिक चमक के साथ व्यक्त करते हैं। रवीन्द्र नाथ टैगोर पहले कवि थे और इसके बाद उपन्यास लेखक, कहानीकार, नाटककार, चित्रकार या संगीतकार थे। हरिवंशराय बच्चन हों, चाहे रामधारी सिंह दिनकर या जयशंकर प्रसाद या भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, उन्हें याद किसी एक विधा के संदर्भ में रेखांकित करके किया जाता है। विषय या परिस्थितिगत आवश्यकताओं के कारण भले ही एकाधिक विधाओं में लेखकों ने विपुल सृजन किया गया हो, किंतु वरीयता एवं निपुणता के संदर्भ में उन्हें केवल एक विधा से जोड़कर याद किया जाता है।

भले ही लेखक में एकाधिक विधाओं में सृजन की क्षमता है, कोई एक विधा उसे सर्वाधिक प्रिय होती है। लेखक के अंदर रची-बसी विधा एक-न-एक दिन उभरकर जरूर सामने आती है। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जब पढ़ने-लिखने की दृष्टि से पूरी तरह विपरीत परिस्थितियों के बावजूद भीतर बैठे लेखक ने साहित्य जगत को चमत्कृत किया है। धूप, हवा और पानी की कमी पौधों को पनपने नहीं देती है। किंतु साहित्य की 'स' से भी जो अपरिचित थे, उनके बीच प्रतिभाशाली लेखक, संवेदनशील कवि और तीक्ष्ण दृष्टि रखने वाले फ़िल्मकार ने केवल जन्म ही नहीं लिया, केवल बड़ा ही नहीं हुआ, उसने ऐसी ऊँचाइयों को छुआ जिनकी कल्पना आस-पास रहने वालों ने स्वप्न में भी नहीं की होगी। अब पाकिस्तान के पंजाब प्रांत के झेलम जिले के एक छोटे-से गाँव दीना में रहने वाले सिख परिवार में मक्खन सिंह कालरा और सुजान कौर के घर में 18 अगस्त, 1934 को जन्म लेने वाला बच्चा संपूर्ण सिंह लेखक, कवि व फ़िल्मकार बनेगा, कौन सोच सकता था? विभाजन के बाद मुंबई में गैराज में कार मैकेनिक के रूप में काम करते हुए संपूर्ण सिंह कालरा ने पहले गुलज़ार दीनवी और बाद में केवल गुलज़ार उपनाम से नज़्में लिखना प्रारंभ किया। पिता की झिड़कियाँ भी गुलज़ार की कलम की धार को कुंद नहीं कर सकीं।

फ़िल्मों की तरह गुलज़ार अपनी लिखी रचनाओं में विभिन्न आकर्षक रंग भरकर उन्हें पठनीय से अधिक दर्शनीय बनाते हैं। बिमल राय के दिशा-निर्देश और मीना कुमारी, शैलेन्द्र, भूषण बनमाली, कमलेश्वर,

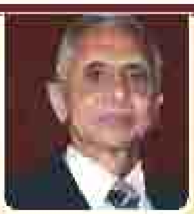

भगवान अटलानी

हिंदी व सिंधी के वरिष्ठ लेखक भगवान अटलानी की अब तक 27 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

सम्मान/पुरस्कार :

राजस्थान साहित्य अकादमी के सर्वोच्च सम्मान मीरा पुरस्कार, राजस्थान सिंधी अकादमी के सर्वोच्च सम्मान सामी पुरस्कार और उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान के एक लाख रुपये के सौहार्द सम्मान से नवाज़े जा चुके अटलानी राजस्थान सिंधी अकादमी के पूर्व अध्यक्ष हैं।

संपर्क : डी-183, मालवीय नगर, जयपुर-302017

साहिर लुधियानवी जैसे संवदेनशील सिने व्यक्तियों के सान्निध्य के कारण गुलज़ार की चित्रमय रचनाशीलता को अत्यधिक सफलता मिली। मूल रूप से गुलज़ार ने उर्दू में लिखा है। मगर सरल व सामान्य, हर व्यक्ति के लिए बोधगम्य उर्दू, महात्मा गांधी की व्याख्या के अनुरूप, प्रत्येक साधारण व विशिष्ट भारतवासी को हिंदुस्तानी बनकर अपनी लगने लगी। फिल्मों के लिए लिखे गए उनके गीत, कथाएँ, पटकथाएँ, संवाद आकर्षक प्रतीकों, मनभावन शब्द चयन और हृदयस्पर्शी चित्रात्मकता के कारण दर्शकों को तो चुंबकीय लगे ही, आलोचकों-समालोचकों को भी मनमोहक प्रतीत हुए। स्तरीय व साहित्यिक कसौटी पर 24 कैरट खरी होने के साथ गुलज़ार की नज़्में और कहानियाँ सिनेमा जगत का समय के पार जाने वाला परिदृश्य बनती रहीं। वे एकमात्र व्यक्ति हैं जिन्हें एक ओर 2002 में उर्दू में प्रकाशित कहानी संग्रह 'धुआँ' के लिए साहित्य अकादेमी पुरस्कार मिला और दूसरी ओर 20 बार फिल्मफेयर व छह बार राष्ट्रीय पुरस्कार से नवाजा गया।

"खास ध्यान देने वाली बात यह है कि चित्रात्मकता गुलज़ार की रचनाशीलता की सबसे बड़ी ताकत है। यही उनके समस्त लेखन की मूल प्रकृति भी है। इसलिए उनका कथा साहित्य अन्य कथाकारों से अलग खड़ा दिखाई देता है।"

हिंदी में प्रकाशित गुलज़ार के कहानी संग्रह 'साँवली चाँदनी रात' के संपादक अशफ़ाक़ अहमद सिद्दीक़ी ने पुस्तक में प्रकाशित भूमिका 'गुलज़ार का व्यक्तित्व' में लिखा है, "गुलज़ार साहब की ये कहानियाँ मैंने उर्दू में पढ़ी थीं, फिर इक्का-दुक्का हिंदी में छपने लगी थीं। उनकी जबान हिंदी में पढ़ो तो हिंदी लगती है, उर्दू में पढ़ो तो उर्दू लगती है।" गुलज़ार के साहित्य, फिल्मों और जीवन पर गहराई से शोध करने वाले पवन झा उनकी भाषा के वैशिष्ट्य को उर्दू व हिंदी के प्रसिद्ध साहित्यकार प्रेमचंद से जोड़ते हुए कहते हैं कि उर्दू तथा हिंदी के प्रचलित शब्दों का प्रयोग करने के कारण गुलज़ार को प्रेमचंद की परंपरा का लेखक माना जा सकता है। भाषा के स्तर पर गुलज़ार के साहित्य का सामान्य पाठक पर पड़ने वाला प्रभाव प्रेमचंद की साहित्यिक रचनाओं की तरह होता है। ये दोनों परस्पर इतने निकट हैं कि अपनी प्रत्येक पुस्तक पर हस्ताक्षर करके गुलज़ार, पवन झा को सौगात के रूप में देते हैं।

अपने वक्तव्य को आगे बढ़ाते हुए पवन झा कहते हैं कि भाषा और चित्रात्मक वर्णन जैसी विशेषताओं के कारण निर्माता-निर्देशकों को गुलज़ार की तीन कहानियों ने फिल्में बनाने के लिए प्रेरित किया। 'सीमा' पर 'लिबास', 'गुड्डू' पर 'गुड्डी' और 'एलओसी' पर 'क्या दिल्ली क्या लाहौर' नाम से फिल्में बनीं। इन तीनों फिल्मों को प्रबुद्ध दर्शकों का भरपूर प्यार मिला। गुलज़ार को फिल्मफेयर, राष्ट्रीय और राष्ट्रपति पुरस्कार मिलने में उनकी कहानियों पर बनी इन तीनों फिल्मों का महत्वपूर्ण योगदान है। गुलज़ार की कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता उनकी चित्रात्मकता है। फिल्मों की दृष्टि से चित्रमय प्रस्तुति निश्चय ही गुलज़ार की कहानियों का एक महत्वपूर्ण प्रतिमान है, किंतु साहित्यिक स्तर और प्रभावशीलता के संदर्भ में चित्रात्मकता कहानियों के भावनात्मक पक्ष को कमज़ोर करती है। 'गुड्डू', 'सीमा' और 'एलओसी' पर बनी फिल्में भावनाओं को उद्वेलित करने में जितनी सफल हैं, कहानियाँ पाठक के अंतरंग का स्पर्श उतना नहीं करती हैं। उनकी प्रसिद्ध कहानियाँ 'बँटवारा' (कहानी संग्रह 'साँवली चाँदनी रात' में 'तक़सीम'), 'धुआँ', 'ख़ौफ', 'रावी पार', 'जामुन का पेड़', 'कागज की टोपी' और 'जंगलनामा' साहित्यिक दृष्टि से स्तरीय होते हुए भी संरचना व सामर्थ्य के संदर्भ में पाठक को अपेक्षाकृत कम उद्वेलित करती हैं। प्रभावशाली प्रस्तुतिकरण व शैलीगत वैशिष्ट्य भी इन कहानियों में भावनात्मक दृष्टि से आलोड़न-विलोड़न की शक्ति समाहित नहीं कर पाया है। खास ध्यान देने वाली बात यह है कि चित्रात्मकता गुलज़ार की रचनाशीलता की सबसे बड़ी ताकत है। यही उनके समस्त लेखन की मूल प्रकृति भी है। इसलिए उनका कथा साहित्य अन्य कथाकारों से अलग खड़ा दिखाई देता है। कहा जा सकता है कि गुलज़ार की कहानियों का दृश्य संयोजन, शब्द विन्यास, ढाँचा, सजीव चित्रण और सामान्य पाठक के लिए सहज तथा बोधगम्य हिंदुस्तानी स्पर्श पाठक को हिलाता चाहे न हो, विचलित जरूर करता है।

गुलज़ार की कहानियों में विभाजन के संत्रासों का भरपूर चित्रण हुआ है। 'बँटवारा' या 'तक़सीम', 'एलओसी', 'रावी पार', 'ओवर' और 'दुम्बे' में दहशत के दौर को घटनाओं में पिरोकर उन्होंने वितृष्णा सृजित की है। विभाजन के समय बँटवारे का ग्रास बने पंजाब को गुलज़ार ने स्वयं जीया है। कहानियों में वह सब उभरकर आता है जो उन्होंने भोगा, देखा व महसूस किया है। पंजाब की तरह आधा बंगाल भी पाकिस्तान के हिस्से में आया था। सिंध प्रांत तो पूरा का पूरा भारत से अलग हो गया था। इन तीनों प्रदेशों के निवासियों पर विभाजन ने सितम ढाए थे। केवल विभाजनग्रस्त पंजाब के निवासियों की व्यथा-कथा गुलज़ार की कहानियों के माध्यम से सामने आए, यह तो समझ में आता है किंतु खुशवंत सिंह और भीष्म साहनी की तरह उनकी रचनाएँ पाठक को अंदर तक झिंझोड़ने में अक्षम हैं। गुलज़ार विभाजन की विभीषिका से स्वयं दो-चार हुए हैं, उस दौर का आतंक उन्होंने हर स्तर पर जीया है, इसके बावजूद उनकी समर्थ लेखनी कहानियों में खुशवंत सिंह और भीष्म साहनी की तुलना में दर्द को पाठक के दिल में अपेक्षाकृत कम उतार पाती है। गुलज़ार की विभाजन केंद्रित कहानियाँ पढ़ने के बाद वातावरण में व्याप्त आतंक तो सामने आता है किंतु भविष्य की संभावनाओं व अनिर्दिष्ट आगत के अनुमान अश्रुकण बनकर आँखों को धुँधला नहीं करते हैं।

गुलज़ार की कहानियाँ चित्रात्मक हैं। पाठक को पढ़ने से अधिक देखने का आनंद देती हैं। इसलिए उनकी कुछ कहानियों को शब्द चित्र की संज्ञा दी जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। 'बास' में कच्ची बस्ती व झोंपड़-पट्टी में रहने वालों को सीमेंट के पक्के मकानों में बसाया जाता है। प्रत्यक्ष रूप से किसी भी सरकार के उठाए इस कदम की प्रशंसा की जाती है। गुलज़ार ने 'बास' में, एक कमरे वाले फ्लैट में रहने के लिए आने के बाद दरपेश आने वाली तकलीफों का ऐसा प्रभावशाली शब्दचित्र बनाया है कि जिसे पढ़ने के बाद सरकार को कच्ची बस्ती में रहने वालों के साथ किया गया अन्याय, उनके ऊपर किया गया अत्याचार महसूस होने लगता है। धनिकों के लिए वर्षा ऋतु उत्सव मनाने का मौसम होता है। मुंबई में खोलियों और कच्ची बस्तियों में रहने वालों के लिए बरसात मुसीबत का दूसरा नाम है। 'झड़ी' में गुलज़ार एक कच्ची बस्ती को कैनवास बनाकर आसमान से पानी के रूप में बरसती आफ़त को हू-ब-हू शब्दों में चित्रित करते हैं। 'सारथी' में स्टीम बोट में काम करने वाले सफ़ाई कर्मचारी मारुति को केंद्र में रखकर पिछड़े वर्ग की बाहर से दिखाई न देने वाली तकलीफ़ों को शब्दचित्र के रूप में उकेरा गया है। फुटपाथ पर रहने और रात गुजारने वालों की जिंदगी के अनदेखे पहलुओं को गुलज़ार ने 'फुटपाथ से' में बेहद बारीकी से चित्रित किया है।

आतंकवाद का जन्म कैसे हुआ? अत्याचार और अधिकार छीनने को आतंकवाद का कारण मानना सिक्के का केवल एक पहलू हो सकता है। मगर आतंकवाद को समाप्त करने के लिए सरकार की ओर से किए जाने वाले उपाय और उनके परिणामस्वरूप सामने आने वाले नतीजे, गहराई से विचार करने की आवश्यकता प्रतिपादित करते हैं। आतंकवादग्रस्त कश्मीर में सेना की अत्यंत कठोर नीति को आधार बनाकर लिखी गुलज़ार की कहानी 'तलाश' इस रवैए पर विचार करने की प्रेरणा देती है। पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी की हत्या को पृष्ठभूमि में रखकर माला पहनाने के बाद, माला पहनने वाले के साथ खुद को भी बम से उड़ा देने वाली महिला की कशमकश की कहानी 'स्वयंवर' आतंकवादी घटना को मनःस्थिति के साथ जोड़कर किया गया प्रस्तुतिकरण है। आतंकवाद के दूसरे चेहरे नक्सलवाद पर लिखी कहानी 'विदाई' में गोरख पांडे की नक्सलवादी मुहिम, जज़्बे और आत्महत्या को स्वविवरण की शैली में पेश किया गया है। इन कहानियों को एक विचार विशेष की पक्षधरता माना जाए, तब भी तटस्थ निरपेक्षता के साथ इनके ऊपर दृष्टिपात करना जरूरी प्रतीत होने लगता है।

समाज में दिखाई देने वाली ऊँच-नीच की भावना, असमानता का व्यवहार, द्वेष भाव, अंधविश्वास, कुरीतियाँ, धर्म या धन के आधार पर हैसियत का आकलन, पुरुष और स्त्री में भेदभाव, लैंगिक असमानता व असम्मान, मूल्यों में आस्था का संकट, भ्रष्टाचार, दहेज जैसे विषयों पर लिखी गईं गुलज़ार की कहानियाँ उनकी सामाजिक चिंताओं का प्रमाण हैं।

भूतों, प्रेतों, भाग्य, ग्रहों और सितारों पर आधारित गुलज़ार की कहानियाँ पाठक को बिलकुल अलग दुनिया में ले जाती हैं। इस दुनिया में तर्कों व दलीलों को एक तरफ़ रखकर मात्र आस्था, विश्वास और भरोसे के साथ वे कुएँ में छलाँग लगाने का रास्ता दिखाते हैं।

कई कहानियाँ गुलज़ार ने विविध विषयों पर लिखी हैं। 'माइकल एंजिलो' एक ही व्यक्ति मार्टलोसेनी को बचपन में ईसा और बड़ा होने के बाद यहूदा के रूप में चित्रित करने की कहानी है। 'जीना यहाँ' एक बीमार रहने वाले स्वाभिमानी राजपुत्र समीर की आत्महत्या की कहानी है। 'अद्धा' एक बौने की संवेदनशीलता और मानवीयता की कहानी है। 'दस पैसे और दादी' उस बच्चे की कहानी है, जिसे घर से भागने के बाद, भिखारिन की मृत्यु के उपरांत उन दस पैसों का महत्व महसूस होता है कि जिनके कारण नाराज होकर उसने घर छोड़ा था। परिणामस्वरूप वह दादी के पास वापस लौट आता है।

गुलज़ार की कहानियों के तीन संग्रह हिंदी में, एक संग्रह उर्दू में और अंग्रेजी में अनूदित होकर दो संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। हिंदी में 'ड्योढ़ी', 'रावी पार' और 'साँवली चाँदनी रात', उर्दू में 'धुआँ' तथा अंग्रेजी में अनुवाद 'माइ फेवरेट स्टोरीज़ : बोस्कीज़ पंचतंत्र' व 'हाफ ए रुपी' शीर्षकों से प्रकाशित हुए हैं। इन संग्रहों में गुलज़ार की कुल 57 कहानियाँ सम्मिलित हैं।

कुछ कहानी संग्रहों की भूमिका और कुछ कहानियों में कतिपय बातें अंतर्विरोधी हैं। वे प्रश्न भी उठाती हैं। कहानी संग्रह 'रावी पार' की भूमिका में एक स्थान पर गुलज़ार लिखते हैं, "कुछ अफसाने यूँ हुए कि फोड़ों की तरह निकले। वह हालात, माहौल और सोसायटी के दिए हुए थे। कभी नज़्म कह के खून थूक लिया और कभी अफ़साना लिखकर ज़ख्म पर पट्टी बाँध ली।" अंतिम पंक्ति पढ़कर प्रश्न उठता है कि क्या कहानी परिस्थितियों के दिए घावों पर पट्टी बाँधने या घावों को ठीक करने का काम सचमुच करती है?

सच है कि गुलज़ार की कहानियों की तुलना में उनकी कविता व शायरी अधिक प्रभावशाली है। मगर कहानियों में चित्रात्मकता और उन्हें फिल्म की तरह फ्रेम में रखकर देखने की शक्ति गुलज़ार को भिन्न श्रेणी का कहानीकार बनाती है। अन्य बहुमुखी प्रतिभाओं के धनी लेखकों और कलाकारों की तुलना में यह पक्ष गुलज़ार को विशिष्ट धरातल पर खड़ा करता है। सरल व सामान्य जन की भाषा उनकी कहानियों की इस विशेषता को इतने चाँद लगाती है कि पाठक दीवानगी की सीमाओं तक गुलज़ार को प्यार करते हैं। • • •

भारत की पुस्तक-संस्कृति और उसका महत्व

भारत में ज्ञान-विज्ञान, धर्म-अध्यात्म, कला-साहित्य, सभ्यता-संस्कृति के साथ-साथ समाज-जीवन के विविध आयामों के संदर्भ में विचार-विनिमय के लिए प्रागैतिहासिक काल से पुस्तक की संस्कृति पल्लवित एवं पुष्पित होती रही है। समाज-जीवन में शिक्षा के प्रचार-प्रसार और श्रेष्ठ जीवन-मूल्य के संरक्षण एवं संवर्धन में पुस्तक की महनीय भूमिका रही है। इसने समाज-जीवन को श्रेष्ठता प्रदान की है। पुस्तक की विकास-यात्रा वस्तुतः भोज-पत्र और ताड़-पत्र से होते हुए आज ई-पुस्तक तक पहुँच गई है। पुस्तक देश-देशांतर की यात्रा तो तब भी करती थी, किंतु आज इसकी गति काफी तीव्र हो गई है। समाज-जीवन को उन्नत और उदात्त बनाने में रोटी, कपड़ा और मकान के अतिरिक्त जो सर्वोपरि है, उसमें ज्ञान के लिए पुस्तक की गरिमा और महिमा अनुपम है। पुस्तक में माँ सरस्वती साक्षात विराजमान रहती हैं। इसलिए भारत में वसंत-पंचमी के दिन माँ सरस्वती के साथ-साथ पुस्तकों की पूजा का भी विधान है।

ज्ञान-विज्ञान, चिंतन-दर्शन, भावना और समझ को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित करने का यह एक सशक्त माध्यम है। सभ्यता और संस्कृति के साथ-साथ सामाजिक मूल्यों, मानदंडों एवं मर्यादाओं की संवाहिका के रूप में भी पुस्तकों को मर्यादित किया गया है। समाज-जीवन के लोकहित और लोकमंगल हेतु चिंतन और सत्यान्वेषण पुस्तकों के माध्यम से अभिव्यंजित होता रहा है। मानवीय चेतना को भी उदात्त बनाने में पुस्तकों की महत्ता सर्वमान्य है। पुस्तकों की महत्ता को रेखांकित करने के लिए ठीक ही कहा गया है कि जिस घर में पुस्तकें रहती हैं, वह मंदिर के समान पवित्र होता है और काशी आदि तीर्थ वहीं निवास करते हैं।

पुस्तकस्य महेशानि यद्गृहे तिष्ठते सदा।
काश्यादीनि च तीर्थानि सर्वाणि तस्य मन्दिरे।।

यह सच है कि भारत में पुस्तकों की आधुनिक छपाई का काम पहली बार गोवा में 1556 ई. में प्रारंभ हुआ था, किंतु भारत में अनादिकाल से पुस्तकों का लेखन होता रहा है और पांडुलिपियों के रूप में उसे सुरक्षित-संरक्षित किया जाता रहा है। वेद और उपनिषद् तो गुरु-शिष्य परंपरा के तहत ही कंठस्थ करके एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित होते रहे हैं। डॉ. जितेंद्र कुमार सिंह 'संजय' ने ठीक ही लिखा है—'लिपि' के जन्म के बाद भी 'श्रुति' का महत्व यथावत्

प्रो. अरुण भगत

जन्म : 4 जनवरी, 1969, सहरसा, बिहार।

शिक्षा : पी-एच.डी.।

संप्रति : अधिष्ठाता एवं अध्यक्ष, मीडिया अध्ययन विभाग, महात्मा गांधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी।

लेखन : समाचार संपादन और संकलन के क्षेत्र में पिछले 10 वर्षों से संलग्न, दो दर्जन से अधिक पुस्तकें प्रकाशित।

सम्मान : महावीर प्रसाद द्विवेदी पत्रकारिता सम्मान, भाषा मित्र सम्मान, पं. प्रताप नारायण मिश्र स्मृति सम्मान।

संपर्क : मोबाइल— 9818387111

ईमेल— arunkumarbhagat174@gmail.com

बना रहा। गुरु-शिष्य परंपरा अक्षुण्ण बनी रही। तभी तो विधर्मियों द्वारा तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला जैसे ग्रंथागारों के नष्ट किए जाने के बाद भी ज्ञान की परंपरा अवरुद्ध नहीं हुई। ऐसे ही विकट समय में किसी मनीषी ने पुस्तक की अपेक्षा कंठ में बसी विद्या को अधिक महत्व प्रदान किया।

पुस्तक को मानव-मात्र के लिए सर्वाधिक विश्वसनीय मित्र माना गया है। व्यक्तित्व के विकास के साथ-साथ पथ-प्रदर्शन और दिशा निर्धारण में पुस्तकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जीवन की मति और गति के सम्यक संचरण में पुस्तकों की महत्ता स्वयंसिद्ध है। अतएव पुस्तकों के माध्यम से सत्यम्, शिवम्, सुंदरम् की भावक अभिव्यक्ति होनी चाहिए, किंतु स्वातंत्र्योत्तर भारत में युग-यथार्थ के नाम पर समाज-जीवन की नकारात्मकता को परोसने का जो कुचक्र चला, उसके कारण समाज और राष्ट्र-जीवन का बड़ा अहित हुआ है। युग-सत्य को रेखांकित करने का संकल्प और पीढ़ी-दर-पीढ़ी उसे हस्तांतरित करने की सिद्धि वस्तुतः इसी में है कि लोकहित और लोककल्याण की भावना से जीवन का शुक्ल पक्ष अक्षरित हो और लेखक का सेवावृत्ति-संस्कार प्रतिष्ठापित हो। वस्तुतः इसी में लेखन का प्राण-तत्व अंतर्निहित है और यही लेखकीय युग-धर्म भी है। इसी से जन-जीवन में सर्जनात्मकता पैदा होगी। सामाजिक सरोकार को संसिद्ध करने का यही सर्वश्रेष्ठ उपक्रम है। इन्हीं अर्थों में लेखक द्रष्टा भी है और स्रष्टा भी है।

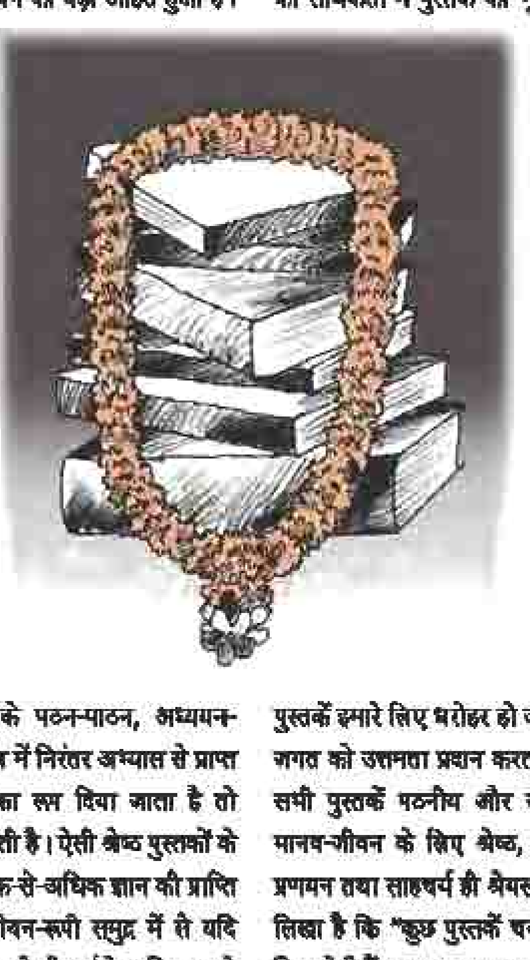

किसी रचनाकार या लेखक द्वारा उनके संपूर्ण जीवन के अनुभव और किसी विषय-विशेष के संदर्भ में उनके पठन-पाठन, अध्ययन-अध्यापन से प्राप्त ज्ञान अथवा क्षेत्र-विशेष में निरंतर अभ्यास से प्राप्त समझ को यदि अक्षरित कर पुस्तक का रूप दिया जाता है तो पीढ़ी-दर-पीढ़ी उससे लाभान्वित होती रहती है। ऐसी श्रेष्ठ पुस्तकों के माध्यम से ही कम-से-कम समय में अधिक-से-अधिक ज्ञान की प्राप्ति की जा सकती है। किसी लेखक के जीवन-रूपी समुद्र में से यदि ज्ञान-रूपी मोती निकालना हो तो पुस्तक को ही सर्वश्रेष्ठ विकल्प के रूप में चुना जाना श्रेयस्कर होगा। जीवन को ज्योतिर्मय बनाने और उसकी पुनर्रचना में श्रेष्ठ पुस्तक की उपादेयता वस्तुतः पथ-प्रदर्शक की मानी जाती रही है। देश-विदेश के अनेक महापुरुषों को गढ़ने में श्रेष्ठ पुस्तकों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। ऐसी ही पुस्तकों को प्रेरणादायी पुस्तकों की श्रेणी में परिगणित किया जाता है।

श्रेष्ठ पुस्तकें एक ओर जहाँ मन-मस्तिष्क को तृप्त करती हैं, ज्ञान की किरणों से अज्ञान के अंधकार को विदीर्ण करती हैं तो वहीं दूसरी ओर मानवीय चेतना का विस्तार करती हैं, आत्मा को गढ़ती हैं और स्वस्थ मनोरंजन भी करती हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि मानव-मात्र के समग्र विकास और सर्वतोभद्र कल्याण के लिए पुस्तकें अपरिहार्य हैं। जीवन की प्रगति का पथ वस्तुतः पुस्तक ही प्रशस्त कर सकती है और उसी से जो प्रकाश प्रस्फुटित होता है, वही परावर्तित होकर जीवन के हर पड़ाव तथा प्रवाह को प्रदीप्त करता है। भारत की प्रतिभा युग-युग से पुस्तकों की रचना और सर्जना द्वारा भारतीय वाङ्मय को श्रीसंपन्न करती रही है। उनकी साधना से ही भारतीय ज्ञान की परंपरा का विकास-विस्तार होता रहा है। उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि जीवन की सार्थकता में पुस्तक की भूमिका महत्वपूर्ण है। यह मानव-जीवन को जीवंतता और प्राणवत्ता प्रदान करती है।

पुस्तकों की रचना युगों-युगों से होती रही है, भले ही उसका रूप हस्तलिखित हो या मुद्रित। उस पर रचनाकार के व्यक्तित्व का प्रभाव तो पड़ता ही है, देश, काल और परिस्थिति का प्रच्छन्न प्रभाव से भी वह सर्वथा मुक्त नहीं हो सकता है। इन सबका प्रभाव पुस्तक पर समेकित रूप से पड़ना स्वाभाविक ही है। समय की सरिता में कुछ पुस्तकें कूड़ा-करकट की तरह बह जाती हैं तो कुछ निक्षेप की तरह लोकमंगल के लिए उपस्थापित होती हैं और कालजयी तथा कालोत्तीर्ण हो जाती हैं। ऐसी ही पुस्तकें हमारे लिए धरोहर हो जाती हैं एवं उसका नवनीत जीवन और जगत को उत्तमता प्रदान करता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सभी पुस्तकें पठनीय और जीवनोपयोगी नहीं होती हैं। अतएव मानव-जीवन के लिए श्रेष्ठ, सर्वोत्तम और सर्वोत्कृष्ट साहित्य का प्रणयन तथा साहचर्य ही श्रेयस्कर है। ख्यात लेखक बेकन ने ठीक ही लिखा है कि "कुछ पुस्तकें चखने के लिए होती हैं, कुछ निगलने के लिए होती हैं तथा कुछ चबा-चबाकर पचाने योग्य होती हैं"।

कहना न होगा कि पुस्तक लिखने और पढ़ने का उद्देश्य वास्तव में लोकहित और लोककल्याण ही होना चाहिए। यह सच है कि विभिन्न कक्षाओं की पाठ्य-पुस्तकों के अध्ययन से विद्यार्थी परीक्षोत्तीर्ण तो होता ही है, किंतु जीवन जीने की सार्थकता के आलोक में भी उसका अध्ययन-अनुशीलन-परिशीलन अपेक्षित है। जीवन

जीने के लिए मानव-मात्र को समर्थ, सार्थक, सफल और योग्य बनाने में पुस्तक के पाठ यदि उपयुक्त हैं, तभी उस पुस्तक-विशेष को श्रेष्ठता की कसौटी पर खरा समझा जाना चाहिए। पुस्तक का वैशिष्ट्य वस्तुतः इसी में है कि उसका नवनीत मानव-मात्र को श्रेष्ठ बनाएगा। पुस्तक-लेखन वास्तव में सभ्यता और संस्कृति के साथ-साथ सामाजिक मूल्यों एवं मर्यादाओं को सुरक्षित-संरक्षित करने का एक पावन उपक्रम भी है।

भारत में श्रेष्ठ पुस्तकों के संचयन और संग्रह की सुदृढ़ परंपरा रही है। व्यक्तिगत पुस्तकालय के साथ-साथ सार्वजनिक पुस्तकालय की यहाँ बड़ी महत्ता रही है। क्या गाँव, क्या शहर; सर्वत्र आपको पुस्तक-प्रेमी मिल जाएँगे। नगरों और महानगरों में पुस्तक-प्रेमियों के लिए मेलों का भी आयोजन किया जाने लगा है। विभिन्न महानगरों में राज्य और राष्ट्र स्तरीय पुस्तक मेलों के साथ-साथ विश्व पुस्तक मेलों का भी आयोजन किया जाने लगा है। यह पुस्तक की संस्कृति को पल्लवित-पुष्पित करने में उपयोगी हो रहा है। यह भी प्रीतिकर प्रसंग और शुभ संकेत है कि आजकल किसी विशिष्ट जन को सम्मानित और अभिनंदित करने के लिए 'बुके' की जगह 'बुक' भेंट करने की परंपरा विकसित हो रही है।

कहा गया है कि पुस्तक में रखी विद्या और दूसरे के हाथ में गया हुआ धन, समय आने पर कभी काम नहीं आते। पुस्तक की सार्थकता इसी में है कि पुस्तक में विद्यमान ज्ञान को हृदयंगम किया जाए और जीवन में उसका उपयोग किया जाए। अनेक पुस्तक-प्रेमी पुस्तकें तो खरीदते हैं, किंतु वे उनके निजी पुस्तकालय की या तो शोभा बढ़ाते हैं या यत्र-तत्र रखे हुए धूल फाँकती रहती हैं। इस संदर्भ में मेरा मानना है कि श्रेष्ठ पुस्तकों का घरों में आना ही अध्ययन-अनुशीलन का पहला सोपान है। घर में पुस्तक रहने पर ही तो पाठक उसे पढ़ने के लिए प्रेरित हो सकेगा। 'विद्या मित्रं प्रवासेषु' की उक्ति को चरितार्थ करने के लिए पहला सोपान भी आवश्यक है। एक बार घर में पुस्तक आ जाए, तब उससे ज्ञानार्जन आसान हो जाता है। पुस्तक के अध्ययन-अनुशीलन की महत्ता को रेखांकित करते हुए ठीक कहा गया है—

पुस्तकेषु च या विद्या परहस्तगतं धनम्
कार्यकाले समुत्पन्ने, न सा विद्या न तद् धनम्।

पुस्तकें कई प्रकार की होती हैं। पुस्तकों की प्रकृति, विषय-वस्तु, आकार-विन्यास, वयःक्रम की उपयोगिता और स्वरूप-विन्यास के आधार पर विभिन्न श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। पुस्तकों को उसकी प्रकृति के आधार पर आठ प्रकारों में विभक्त किया जा सकता है—1. पाठ्य-पुस्तक, 2. शब्दकोश, 3. विश्वकोश, 4. निर्देशिका, 5. वार्षिकी, 6. अभिनंदन ग्रंथ, 7. सर्जनात्मक पुस्तक और 8. संदर्भ-ग्रंथ। पुस्तक की विषय-वस्तु के आधार पर उनके दो प्रकार हो सकते हैं—1. ज्ञानपरक पुस्तक और 2. रचनात्मक पुस्तक या सर्जनात्मक पुस्तक।

ज्ञानपरक पुस्तक के अंतर्गत ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न अनुशासन की पुस्तकों को रखा जा सकता है, जैसे—विज्ञान विषयक पुस्तक (रसायन विज्ञान, भौतिकी, जीव विज्ञान इत्यादि), कला विषयक पुस्तक (साहित्य, इतिहास, भूगोल, समाजशास्त्र इत्यादि), वाणिज्य विषयक पुस्तक, धर्म-अध्यात्म विषयक पुस्तक, प्रेरणादायी पुस्तक इत्यादि। रचनात्मक पुस्तकों की श्रेणी में कविता, कहानी, उपन्यास, संस्मरण, यात्रा वृत्तांत, निबंध, आलेख, रिपोर्ताज इत्यादि से संबद्ध पुस्तकें आती हैं। कहना न होगा कि इन रचनात्मक पुस्तकों के द्वारा मुख्य रूप से मानवीय चेतना का विस्तार होता है, किंतु इसका अर्थ यह नहीं कि ये ज्ञानपरक नहीं हैं। वस्तुतः पुस्तकों की विषय-वस्तु के आधार पर उसके मूल उद्देश्य के आलोक में उपर्युक्त दो श्रेणियों में पुस्तकों को विभक्त किया गया है।

पुस्तकों के आकार-विन्यास के आधार पर मुख्य रूप से दो प्रकारों में विभक्त किया जा सकता है—1. एक खंडीय पुस्तक तथा 2. बहु-खंडीय पुस्तक। आकार-विन्यास की दृष्टि से विश्वकोश प्रायः बहु-खंडीय होते हैं। आकार-विन्यास के आधार पर पुस्तकों को डिमाई, क्राउन, डबल क्राउन इत्यादि श्रेणियों में भी बाँटा जा सकता है। पाठकों के वयःक्रम के आधार पर भी पुस्तकों को दो प्रकारों में विभक्त किया जा सकता है—1. बालोपयोगी पुस्तक 2. प्रौढ़-उपयोगी पुस्तक। स्वरूप-विन्यास के आधार पर पुस्तकों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है—1. चित्रात्मक पुस्तक (Pictorial Book), 2. शब्द बाहुल्य पुस्तक (Text Book) तथा 3. वेब पुस्तक (E-Book)।

इस प्रकार पुस्तकों की कितनी भी श्रेणियाँ क्यों न हों, वे वस्तुतः मानव के मन-मस्तिष्क को ज्ञान और भावबोध से भर देती हैं। पुस्तकों में विद्यमान ज्ञान और विचार वस्तुतः मन-मस्तिष्क को सदैव क्रियाशील बनाए रखते हैं। इसके बिना मानव का चतुर्दिक् विकास संभव नहीं है। अज्ञान और अंधकार से प्रकाश-लोक में ले जाने के लिए पुस्तक की महत्वूपर्ण भूमिका होती है। मानव को शिक्षित, संस्कारित और सद्गुण-संपन्न बनाने के लिए पुस्तक की महत्ता सर्वोपरि है। श्रेष्ठ पुस्तकों के अध्ययन-अनुशीलन से मानव को ज्ञान के साथ-साथ शील और शुचिता को जो संस्कार प्राप्त होता है, वह जीवन के विषम और संघर्षपूर्ण क्षणों में भी उन्हें प्रतिकूलताओं का सामना करने के लिए सामर्थ्यवान बनाता है। सफल और सार्थक जीवन के लिए श्रेष्ठ पुस्तकों का सत्संग अपेक्षित है। बुद्धि को प्रखर करने, आचार-विचार को सदाचारपूर्ण बनाने, हृदय को निर्मल करने, जीवन के कंटकाकीर्ण मार्ग को सरल बनाने और यहाँ तक कि अलौकिक परमानंद की प्राप्ति के लिए भी श्रेष्ठ पुस्तकें अपरिहार्य हैं। वस्तुतः यही पुस्तकों की श्रेष्ठता की कसौटी भी है। अतएव पुस्तकों का साहचर्य और सत्संग मानव-मात्र के लिए परमावश्यक है।

समीक्षक : सुधांशु गुप्त

लेखिका : मीनाक्षी स्वामी

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 146

मूल्य : रु. 170/-

मीनाक्षी स्वामी– संकलित कहानियाँ

कहानियाँ घटनाओं से परे जाकर देखने की ही कला नहीं हैं, बल्कि घटनाओं के होने से पहले ही क्या होने वाला है या हो सकता है, यह देख लेने की कला भी है। मीनाक्षी स्वामी की कहानियाँ जीवन के बिलकुल करीब जाकर संभावित को देखने की कहानियाँ हैं। सहज, सरल, सात्विक और सदिच्छाओं से भरी उनकी कहानियों की ताकत यही है कि वे कुछ बड़ा या विस्फोटक अपनी कहानियों में नहीं दिखातीं। उनकी कहानियों में छोटे-छोटे, डर, आशंकाएँ, सपने, उम्मीदें दिखाई पड़ती हैं। इन कहानियों को पढ़कर बर्बस आपको यह लगेगा कि अरे यही तो मैं भी सोच रहा था। लेकिन घटनाओं और शोर-शराबे के विपरीत ये जीवन की तरह ही बेहद धीमी रफ्तार से आगे बढ़ने वाली कहानियाँ हैं। अंत तक आते-आते इनका प्रभाव स्थायी रूप से आपको घेर लेता है। 'मीनाक्षी स्वामी-संकलित कहानियाँ' में उनकी छोटी-छोटी 19 कहानियाँ हैं। ये कहानियाँ मिलकर जीवन का एक सुखद कोलाज बनाती हैं। संग्रह की पहली ही कहानी 'धरती की डिबिया' बेहद खूबसूरत कहानी है। कहानी का नायक बचपन के दिनों को याद कर रहा है। वह याद करता है कि किस तरह बारिश के दिनों में टपकती बूँदों को वह माचिस की डिबिया में पकड़ लेना चाहता था। बारिश की बूँदें डिबिया में आते ही पानी में बदल जाती थीं और उसके दोस्त उसका मजाक उड़ाते थे। लेकिन अपने बचपन के सपने को पूरा करने के लिए वह नायक बड़ा होकर बारिश की बूँदों को पृथ्वी की डिबिया में एकत्रित करने लगा। आस-पास के सभी लोग उसके इस प्रयास से चकित होते। उसने डबरी बनवाई, तालाब खुदवाए, चेक डेम बनवाए, उस पर पानी को बचाने और धरती की डिबिया में सँजोने का जुनून सवार हो गया। अखबार वाले उसे कभी इंद्रदेव बताते तो कभी लोकतंत्र का महानायक। जल संरक्षण पर लिखी यह संभवतः सर्वश्रेष्ठ कहानी है। प्रकृति से जुड़ी मीनाक्षी स्वामी की कहानियों में स्त्री विमर्श भी दिखाई देता है, लेकिन उनके किरदार किसी तरह का प्रदर्शन या नाटकीयता से कोसों दूर रहते हैं। 'बेवजह हँसती लड़कियाँ' और 'बगुला बैठा ध्यान में' ऐसी ही कहानियाँ हैं। बगुला बैठा ध्यान में एक ऐसे युवक की कहानी है जिसका स्त्रियों के प्रति विशेष रुझान है। ट्रेन में उसे एक स्त्री दिखाई पड़ती है। वह लगातार उसे अपनी ओर आकर्षित करने की कोशिश करता है। सामने की सीट पर बैठी उस स्त्री के बगल में वह अपने पैर फैलाकर रख देता है। स्त्री का पैर उसके पैर से टकराता है। वह किसी संभावना को तलाश रहा है, लेकिन स्त्री हाथ बढ़ाकर उसके पैरों को छूती है फिर माथे से लगा लेती है, मानो क्षमायाचना कर रही हो। स्त्री के उस संस्कारित आचरण को देखकर नायक को अहसास होता है कि नारी देह के अलावा और कुछ भी है। 'अमृतघट' प्रतीकात्मक अर्थों में एक प्रेम कहानी है तो 'तुमसे पूछा नहीं था' में एक युवक और युवती की मुलाकात होती है। दोनों के बीच संक्षिप्त वार्तालाप भी होता है। मन के किसी कोने में दोनों एक दूसरे को पसंद भी करने लगते हैं, लेकिन कोई भी अपने मन की बात नहीं कह पाता। बाद में भी दोनों की एक-दो मुलाकातें होती हैं, लेकिन बात अधूरी रह जाती है। इस बीच युवक युवती को बिना बताए अपने गाँव लड़की देखने चला जाता है। लौटकर जब युवती से उसकी दोबारा मुलाकात होती है तो उसे इस घटनाक्रम का पता चलता है। युवक की शादी की खबर सुनकर उसका चेहरा सफेद पड़ जाता है। युवती पूछती है, फिर तुमने हाँ कर दी, युवक कहता है, 'नहीं', क्योंकि तुमसे पूछा नहीं था। यह एक बेहद नफीस और मौन प्रेम कथा है। 'तब क्या होता...' कहानी भी संभावना की कहानी है। 'इतिहास की चहलकदमी' कहानी में मीनाक्षी इतिहास को वर्तमान में लाकर नए संदर्भों में द्रोण, अर्जुन और एकलव्य की कहानी कहती हैं। मीनाक्षी ने इस पौराणिक कथा को नए संदर्भों में बेहतर ढंग से जोड़ा है।

समाज में मीडिया की वर्तमान स्थिति पर मीनाक्षी की कहानी है 'मीडिया ट्रायल'। इस कहानी में शहर के अपने बंगले में रहने वाली 35 वर्षीया अविवाहित महिला न्यायाधीश से उनके सर्वेंट क्वार्टर में रहने वाले अशोक नाम के चपरासी ने जोर-जबरदस्ती की। यह खबर फैलते-फैलते मीडिया तक पहुँच जाती है। न्यूज चैनल किस तरह इस खबर को तमाशा बना देते हैं, यह पूरी कहानी में दिखाया गया है। महिला न्यायाधीश खुद भी चैनल देखती रहती हैं। कहानी के अंत में उनका मंगेतर घर आता है। महिला पूछती है आज टीवी नहीं देखा, मंगेतर का जवाब है, देखा तभी तो आया। यह कहानी मीडिया द्वारा अनावश्यक रूप से लोगों पर मुकदमा

चलाने की कहानी है, जिसमें वे तथ्यों को अपनी मर्जी से तोड़ते-मरोड़ते हैं।

मीनाक्षी अपनी किसी भी कहानी में शालीनता की सीमा नहीं लाँघतीं। भाषा, शिल्प और कंटेंट को वह कभी लाउड या अभद्र नहीं होने देतीं। नफासत और सात्विकता उनकी कहानियों की ताकत है।

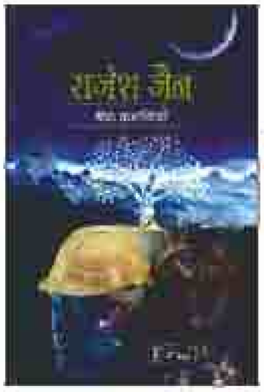

समीक्षक : सुधांशु गुप्त

लेखक : राजेश जैन

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 258

मूल्य : रु. 265/-

राजेश जैन–

श्रेष्ठ कहानियाँ

19वीं सदी के प्रारंभ और 20वीं सदी के मध्यकाल में अनेक विज्ञान कथाएँ लिखी गईं। एडगर एलन पो (1809-1849) ने अमेरिका में विज्ञान कथा लेखन की शुरुआत की। बाद में एच.जी. वेल्स के 'द वार ऑफ द वर्ल्ड्स' और 'द टाइम मशीन' जैसे उपन्यास छपे जो विश्व प्रसिद्ध हुए। 19वीं सदी के शुरू में कृत्रिम जीवोत्पत्ति पर मैरी शैली का उपन्यास आया 'फ्रैंकेस्टीन'। एल्डूस हक्सले और डेविड शेरविक ने भी विज्ञान कथाओं पर उपन्यास लिखे। लेकिन भारत में विज्ञान कथाओं को फंतासी, जादू टोने और चमत्कार तक सीमित कर दिया गया। देवकीनंदन खत्री इसी श्रेणी के रचनाकार हैं। हालाँकि आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने भी विज्ञान कथा उपन्यास 'खग्रास' लिखा। लेकिन साहित्य जगत ने इसे कोई तवज्जो नहीं दी। यहाँ तक कि राहुल सांकृत्यायन ने 1924 में 'बाइसवीं सदी' नाम से उपन्यास लिखा। 1956 में डॉ. ओमप्रकाश शर्मा ने 'मंगल यात्रा' नाम से एक वैज्ञानिक उपन्यास लिखा। इसे हिंदी का पहला वैज्ञानिक उपन्यास कहा गया, लेकिन किन्हीं कारणों से विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर लिखी रचनाएँ हिंदी पाठकों के गले नहीं उतरीं। इसकी एक वजह यह भी हो सकती है कि हिंदी का पाठक विज्ञान और प्रौद्योगिकी की जानकारी न रखने के कारण इन्हें स्वीकार नहीं कर पाया। एक अन्य कारण यह हो सकता है कि लेखक विज्ञान और प्रौद्योगिकी को कथा में ठीक से 'सिंक्रोनाइज' न कर पाए हों।

बहरहाल हिंदी में विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर राजेश जैन की श्रेष्ठ कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं, जो इस मिथ को तोड़ती है कि हिंदी का पाठक विज्ञान कथाएँ पसंद नहीं करता। तीन खंडों में बँटे इस संग्रह में विज्ञान (सात कहानियाँ), प्रौद्योगिकी (15 कहानियाँ) और पर्यावरण (पाँच कहानियाँ) पर कुल 27 कहानियाँ हैं। यह भी सुखद संयोग है कि विज्ञान कथा लेखक राजेश जैन प्रबंधन और ऊर्जा क्षेत्र में इंजीनियरिंग की शिक्षा पाए हुए हैं। यही वजह है कि उनके अधिकांश किरदार विज्ञान और प्रौद्योगिकी के इर्द-गिर्द घूमते हैं। इस संग्रह की कुछ कहानियाँ वाकई कहानियों की नई जमीन तलाशती दिखाई देती हैं। 'प्रोग्रामिंग' कहानी 21वीं सदी के संध्याकाल में एक महानगर की कहानी है। इसमें विभा और विकास पति-पत्नी हैं। वे एक फ्लैट में रहते हैं। विभा जेनेटिक इंजीनियरिंग में स्नातक हैं तो विकास एरोनॉटिक्स में। विकास ने विमानों के पुर्जे बनाने की छोटी-सी फैक्टरी डाली है, जहाँ रोबोट काम करते हैं। फैक्टरी के कामकाज के अलावा विकास साहित्यिक कामों में भी उलझा रहता है। पत्नी को ये सब व्यर्थ के काम लगते हैं। दोनों अपने-अपने कामों में उलझे हुए हैं। लिहाजा दोनों के बीच तनाव पैदा होने लगता है। कहानी बताती है कि किस तरह विज्ञान और मशीनों से घिरा इनसान मानवीयता खोता जा रहा है। यह कहानी विज्ञान और प्रौद्योगिकी के दौर में आपसी रिश्तों की खोज करती है। 'मन मोबाइल', 'अंधा सपना', 'मकामशीन' ऐसी ही खूबसूरत कहानियाँ हैं।

'निद्राखोर' कहानी में नायक निद्रा को एक उत्पाद की तरह इस्तेमाल करने की बात करता है। वह गरीबों की नींद को चुराकर अमीरों को मोटी कीमत पर बेचने के विचार को अमली जामा पहनाता है। लेकिन कहानी के अंत में लेखक ने बड़ी खूबसूरती से इस कारोबार के विरुद्ध बड़ी बात कही है। नायक अपने पिता को मासूमियत, सरलता और माधुर्य से सोता देखता है और सोचता है कि उसे भी पिता की इस वसीयत को सँभालकर रखना होगा। राजेश जैन की अधिकांश कहानियों में विज्ञान, प्रौद्योगिकी और पर्यावरण बड़ी सहजता से आते हैं। ऐसा नहीं लगता कि वह जबरदस्ती अपनी कथा में इन्हें थोप रहे हैं। रिमोट कंट्रोल, कोख कंक्रीट, अनेकांत, स्पेयर पार्ट्स ऐसी ही कहानियाँ हैं जिन्हें पढ़कर आपको इस बात पर हैरानी हो सकती है कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी हमें कितनी सहूलियत दे रही है, लेकिन उसके बदले हम क्या खो रहे हैं। 'पाइप में बहती नदियाँ' कहानी में लेखक पानी की समस्या को आपसी रिश्तों के माध्यम से दिखाता है। उसे पाइप में बहती नदियाँ दिखाई पड़ती हैं। लेकिन उसका तकनीकी मन फिर भी गरीबों और मजलूमों के लिए पानी की कोई व्यवस्था नहीं करना चाहता।

राजेश जैन की कहानियाँ पढ़ना वास्तव में विज्ञान, प्रौद्योगिकी, पर्यावरण और इनसानी रिश्तों को नए सिरे से समझना है। ये विज्ञान को किसी चमत्कार की तरह नहीं दिखातीं, बल्कि इस बात की खोज करती हैं कि कैसे इसका असर मनुष्य और उनके आपसी रिश्तों पर पड़ रहा है। यही बात इस संग्रह को महत्वपूर्ण बनाती है।

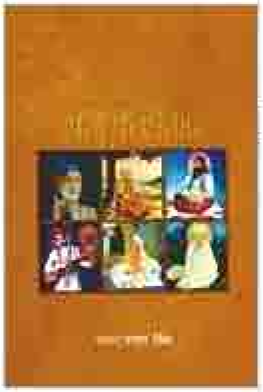

समीक्षक : डॉ. स्नेह तिवारी
लेखक : उदय प्रताप सिंह
प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070
पृष्ठ : 116
मूल्य : रु. 140/-

संतों के संवाद

मनुष्य को अन्य प्राणियों से उन्नत और बेहतर बनाने वाला कोई उपकरण है तो वह है उसकी भाषा। भाषा के जरिए ही मनुष्य अपने भावों-विचारों को दूसरों तक संप्रेषित करता रहा है। 'संतों के संवाद' शीर्षक पुस्तक ऐसे ही अनेक संवादों को प्रामाणिकता की कसौटी पर परखने का कार्य करती है। इस पुस्तक में अपनी बात शीर्षक से लेखक ने आरंभ में पुस्तक का औचित्य स्पष्ट कर दिया है। "संतों के स्वभाव, प्रभाव और निष्काम भाव को केंद्र में रखकर 'संतों के संवाद' पुस्तक का सृजन किया गया है।" कहा जाता है कि संत समाज का होता है। समाज के लिए उसका प्रत्येक कार्य ही नहीं, अपितु समस्त जीवन ही समर्पित होता है। "समाज को निर्मल चित्त बनाने, रागद्वेष से विवर्जित रहने, गैर-बराबरी को निरर्थक बताने, प्रेम का साम्राज्य स्थापित करने और मनुष्य से मनुष्य के बीच विभाजक रेखाओं से बड़ी प्रेम की रेखा खींचने में संतों ने अद्भुत, अपूर्व कार्य किया है।" इसी क्रम में आगे लेखक लिखता है, "उपास्य के तमाम दुरारूढ़ मार्गों को त्यागते हुए संतों ने जिस भक्ति-भाव के मार्ग का प्रचलन किया, उसमें अकेले की मुक्ति मोक्ष नहीं बन सकी, अपितु पूरे समाज का मोक्ष ही मोक्ष कहा गया।...'संतों के संवाद' नामक कृति में भक्तिपरक संवादों से इस चेतना को पुनर्सृजित करने का प्रयास किया गया है।" पुस्तक के लेखक उदय प्रताप सिंह भारतीय संत साहित्य के ख्यातिलब्ध रचनाकार हैं। इस पुस्तक के माध्यम से लेखक ने संत नामदेव, रामानंद, कबीर, रैदास, पीपा, दादूदयाल, जायसी, मीरा, चाँद बीबी, तुलसीदास, दरिया साहब, कीनाराम, हनुमान प्रसाद पोद्दार आदि संबंधी कई रोचक जानकारियाँ प्रदान की गई हैं। यह पुस्तक लेखक के विशद अध्ययन-विश्लेषणपरक क्षमता को भी प्रमाणित करती है।

संत नामदेव नाथमत में दीक्षित होने के बाद कहते हैं—

"मन मेरी सूई, तन मेरा धागा, खेचरी के चरण पर नामा सिंपीलागा।"

इनके अभंग नाम-साधना से भरे पड़े हैं—

"हरि नाँव हीरा, हरि नाँव लेत मिटै सब पीरा।"

कबीरदास को संत काव्य-परंपरा का प्रवर्तक कहा गया है। कबीर के गुरु के रूप में रामानंद का नाम लिया जाता है।

भक्ति द्रविड़ उपजी लाए रामानंद।
परगट किया कबीर ने सप्त दीप नवखंड।।

कहा जाता है कि भक्ति का जन्म सुदूर दक्षिण में हुआ। रामानंद उसे दक्षिण से उत्तर की ओर लाए और उनके शिष्य कबीर ने इसको जन-जन तक पहुँचाया। लेखक ने कबीर के गुरु के रूप में विख्यात रामानंद को 'रामभक्ति के भगीरथ' बताया है। लोक की चित्तवृत्तियों की सही पहचान करने वाला ही युगीन नायक बन सकता है। रामानंद ने क्षीरसागर में शयन करने वाले विष्णु को अपना उपास्य न अंगीकार कर प्रत्यक्ष जीवन में संघर्षरत उन्हीं के अवतार भगवान राम को आराध्य घोषित किया। इनके शिष्य हुए कबीरदास। संत काव्य के प्रवर्तक के रूप में कबीरदास जी के अनुयायियों की एक लंबी परंपरा देखी जाती है। कहा जाता है कि इनके शिष्यों ने इनके पदों को तब तक याद रखा जब तक छापाखाना का विकास नहीं हो गया। शिष्यों के अलग-अलग परिवेश से जुड़े होने के कारण इनके शिष्यों में भी कई पदों के शब्दों में उच्चारणगत भेद दिखाई पड़ता है। यह भेद बाद के संपादित ग्रंथों में भी देखा जा सकता है। इन सबके बावजूद कबीर के पदों को भारतीय जनमानस ने जिस रूप में अंगीकार किया, दूसरे संत कवियों को यह ऊँचाई और लोकप्रियता नसीब नहीं हो सकी। कबीर के महत्वपूर्ण पदों में से एक का अंश यहाँ दर्शनीय और विचारणीय है—

मेरा तेरा मनुआ कैसे एक होई रे।
मैं कहता आँखिन की देखी,
तू कहता कागद की लेखी।।

मैं कहता सुरझावनहारी,
तू राख्यो अरुझाई रे।।

आत्मविश्वास और निर्भयता कबीर के दो महत्वपूर्ण गुण हैं। अपने ईश्वर और साधना पर पूरा भरोसा है उन्हें—

हम ना मरैं मरिहैं संसारा,
हमको मिला जियावन हारा।

संत रैदास द्वारा अपने समय में जनजागृति के उद्देश्य से गाए गए दोहों को, पदों को इस लेखक ने भली-भाँति स्मरण किया है—

जात जात में जात है, ज्यों केलन में पात।
रविदास मनुख न जुड़ सकै, जब लौं जात न जात।।

इसी प्रकार पीपा, दादू, जायसी, मीरा, चाँद बीबी, तुलसी, दरिया साहब, कीनाराम, हनुमान प्रसाद पोद्दार आदि संतों के जीवन और रचनाओं पर भी लेखक ने बड़े ही प्रामाणिक अंदाज में प्रकाश डाला है। कुल मिलाकर यह किताब प्रमुख संत कवियों के जीवन और रचनाकर्म से जुड़े कई अनछुए पहलुओं को ध्यान में रखकर गंभीरता और जिम्मेदारी के साथ रची गई है। पाठकों को निश्चय ही इससे अनेक सकारात्मक दिशाएँ भी मिलेंगी।

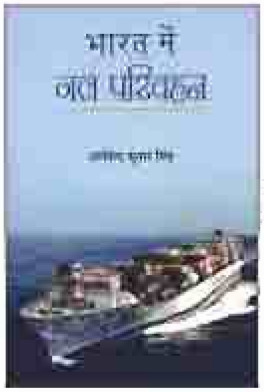

समीक्षक : डॉ. रमेश तिवारी

लेखक : अरविन्द कुमार सिंह

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 220

मूल्य : रु. 245/-

भारत में जल परिवहन

समस्त मानव सभ्यताओं का विकास प्रायः नदियों के किनारे हुआ है। जैसे-जैसे मानव सभ्यता का विकास हुआ है, मनुष्य की जीवन-शैली निरंतर उन्नत होती गई है। यह गौरतलब उन्नति की ओर अग्रसर मानव सभ्यता ने निरंतर आवागमन के नए-नए साधनों की खोज और आविष्कार किए हैं। आज जितने भी यातायात के माध्यम हम देखते हैं, वे सब इसी मानवीय प्रवृत्ति का परिणाम हैं। यातायात के साधनों में जल, स्थल, वायु तीनों ही माध्यमों में आज हम निरंतर प्रगति देख सकते हैं। इन तीनों में ही जल परिवहन मानव सभ्यता की आरंभिक खोज हैं। धीरे-धीरे कलपुर्जों और मशीनों की मदद से हमने जल परिवहन को भी निरंतर गति प्रदान की है। अरविन्द कुमार सिंह जो पेशे से खोजी पत्रकार रहे हैं, इस पुस्तक के लेखक हैं। इस विषय पर लेखक ने आधिकारिक रूप से बहुत श्रम करते हुए अनुभव और ज्ञान का संरक्षण-संवर्धन किया है। एशिया के कई देशों का भ्रमण कर चुके लेखक ने तीन दशकों में संचार और परिवहन के साथ खेती-बाड़ी पर काम किया है।

इस पुस्तक में लेखक ने भारतीय जल परिवहन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से शुरुआत की है और आधुनिक भारत के जल परिवहन का परिचय कराते हुए राष्ट्रीय जलमार्गों के विकासात्मक पहल के ऐतिहासिक महत्व को रेखांकित कर पाठकों को महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान की है। कई महत्वपूर्ण अध्यायों में विभाजित यह पुस्तक इस मायने में अप्रतिम है कि इसमें भारत के सुदूर पूर्वोत्तर से लेकर दक्षिण के केरल आदि प्रदेशों तक के जल परिवहन माध्यमों से परिचित कराने की पहल की गई है। राज्यों में जल परिवहन संबंधी योजनाएँ, नदियों को जोड़ो परियोजनाएँ जलयान, नौकाएँ, नदी, क्रूज और पर्यटन विकास की दशा-दिशा को भी लेखक ने बड़े ही व्यापक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है। जल परिवहन के अंतर्गत झील, नौकायन, जलक्रीड़ा, थोक माल ढुलाई, ओवरडाइमेंशनल कार्गो के साथ-साथ जल परिवहन को सबसे किफायती और पर्यावरण मित्र परिवहन माध्यम के रूप में दर्शाया गया है।

किसी भी माध्यम अथवा साधन की कुछ खूबियाँ होती हैं तो कुछ खामियाँ भी होती हैं। समग्र अध्ययन-विश्लेषण की कसौटी यही मानी जाती है कि खूबियों के साथ-साथ खामियों पर भी वस्तुगत दृष्टि डालते हुए उनकी चर्चा और मूल्यांकन किया जाए। लेखक ने इस दृष्टि से एक अध्याय में विशेष रूप से जल परिवहन क्षेत्र की कमजोरियों और चुनौतियों पर विचार किया है। यातायात के अन्य माध्यमों की तरह ही जल परिवहन के भी अपने कुछ कानूनी प्रावधान होते हैं। इनकी जानकारी के अभाव में हम इस परिवहन का बेहतर उपयोग नहीं कर सकते हैं। इस दृष्टि से 'जल परिवहन और कानूनी प्रावधान' शीर्षक पाठ अत्यंत महत्वपूर्ण है। जल परिवहन के हृदयस्थल के रूप में वाराणसी का उल्लेख मनोहारी है। राष्ट्रीय अंतर्देशीय नौचालन संस्थान, अंतर्देशीय जल परिवहन और सुरक्षा-संरक्षा, विभिन्न देशों में अंतर्देशीय जल परिवहन आदि पाठ राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय जल परिवहन की समकालीन स्थिति के साथ-साथ इस विषय के तकनीकी पक्षों को भी पाठकों के समक्ष रखने में सहायक हैं। जल परिवहन का जो वर्तमान परिदृश्य है, इसका भावी स्वरूप क्या हो सकता है और क्या होना चाहिए, इस दृष्टि से भी लेखक ने 'जल परिवहन : भावी परिदृश्य और संभावनाएँ' शीर्षक से रचना कर सार्थक कार्य किया है।

प्रायः हम देखते हैं कि यातायात के स्थल एवं वायु माध्यमों पर काफी कुछ सामग्री उपलब्ध है। किंतु जल परिवहन के अतीत-वर्तमान और भावी परिदृश्य पर महत्वपूर्ण और प्रामाणिक पुस्तकों का अभाव दिखता है। इस अभाव को ध्यान में रखते हुए न्यास ने इस महत्वपूर्ण पुस्तक को बहुत ही सार्थक ढंग से प्रकाशित किया है। लेखक ने इस पुस्तक में जितनी महत्वपूर्ण-उपयोगी जानकारियों को संकलित कर प्रस्तुत किया है, इसके लिए वह निश्चय ही साधुवाद का हकदार है। पुस्तक के आखिरी हिस्से में परिशिष्ट के अंतर्गत भारत के राष्ट्रीय जलमार्ग, प्रमुख जलमार्गों की लंबाई, वृहद् नदी बेसिन, मध्यम नदी बेसिन और पूर्व-पश्चिम की बहने वाली नदियों की जानकारी देने के साथ-साथ लेखक ने संदर्भ ग्रंथों की सूची उपलब्ध कराकर इस पुस्तक में संकलित तमाम जानकारियों को प्रामाणिक बनाने की सफल कोशिश की है।

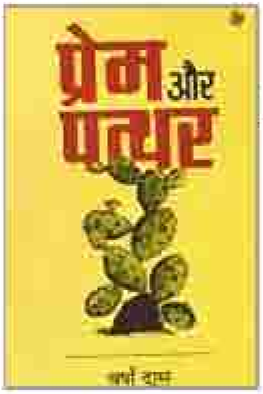

समीक्षक : रवींद्र भट्ट

लेखिका : वर्षा दास

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

पृष्ठ : 124

मूल्य : रु. 300/-

प्रेम और पत्थर

प्रतिष्ठित लेखिका डॉ. वर्षा दास ने पुस्तक में चार कहानियों के नाट्य-रूपांतर प्रस्तुत किए हैं। वे पिछले चार दशकों से गुजराती, हिंदी और अंग्रेजी में मौलिक लेखन और बांग्ला, ओड़िया, गुजराती, हिंदी तथा अंग्रेजी से अनेक विधाओं-विषयों में अनुवाद कर रही हैं।

इस संकलन की पहली नाट्य-रूपांतरित बांग्ला कहानी 'प्रेम और पत्थर' के लेखक डॉ. लोकनाथ भट्टाचार्य हैं। शिवजी की एक प्राचीन मूर्ति एक ऐसे तथाकथित संस्कृति-मर्मज्ञ और संरक्षक द्वारा चोरी कर ली जाती है जिसके पास कहानी का मुख्य चरित्र बड़े रुतबे-पैसे वाली नौकरी के सिलसिले में पहुँचता है। शिवजी की मूर्ति उसे साहसिक और नैतिक निर्णय लेने को प्रेरित करती है। वह ऐसे पतित व्यक्ति और उसके सहयोगी की मदद से मिल सकने वाली बड़ी नौकरी के प्रलोभन को ठुकरा देता है और बेईमानी तथा क्षुद्रता की संकीर्णता से निकलकर सच्चाई के मुक्त आकाश को चुनता है। कथानक का अंत प्रारंभ से ही स्पष्ट होने लगता है। करीब 30 पृष्ठ के इस रूपांतर में पाँच 'फ्लैशबैक' हैं।

'भय हुआ' डॉ. लोकनाथ भट्टाचार्य की ही एक अन्य कहानी का रूपांतरण है। यह एक जटिल मनोवैज्ञानिक कथानक है। 'सुभाष' ऐसा ही एक जटिल चरित्र है जिसकी माँ के प्रिय कुत्ते की एक प्लंबर के हाथों मौत हो जाती है। कुछ महीनों में (सदमे से नहीं, सामान्य रोगों से) सुभाष की माँ की मृत्यु हो जाती है। सुभाष, इसके लिए प्लंबर को जिम्मेदार मानकर शुरू में तो भयानक बदले की आग में जलने लगता है, लेकिन चूँकि प्लंबर को मारना संभव नहीं है इसलिए वह उसे माफ करके और उस गरीब की ज्यादा-से-ज्यादा मदद करके मानसिक सुकून पाना चाहता था। पर इसी बीच प्लंबर के भी अचानक मर जाने से सुभाष की यह राह भी बंद हो जाती है। तब वह उसकी अंत्येष्टि का प्रबंध करने लगता है, उसकी पत्नी से आजीवन मदद करने का वादा कर देता है, यहाँ तक कि (प्लंबर की भारी बारिश वाले दिन मृत्यु होने के बाद) एक लेखक 'अनिल' के पास पहुँच जाता है और अपने एक 'आत्मीय' की मृत्यु हो जाने की सूचना देते हुए उसे (लेखक होने के नाते) मृतक की विधवा को दिलासा देने को साथ चलने को भावनात्मक रूप से मजबूर कर देता है। लेखक श्मशान तक भी चला जाता है और उसे पता चलता है कि सुभाष का यह सारा कार्य मात्र स्व-आयोजित प्रदर्शन है। इस मोड़ पर सुभाष का भावनात्मक पैंडुलम अब दूसरी व्यावहारिक दिशा में जाने लगता है और वह तार्किक दृष्टि से सोचने लगता है कि उसकी माँ की मृत्यु भी सामान्य घटना थी और अब उसे मृतक की विधवा से किए मदद के वादे में फँसे रहने की जरूरत नहीं है।

श्रीमती लाभुबेन मेहता की गुजराती कहानी का नाट्य-रूपांतर बेहद सरलीकृत और सपाट लगता है। एक लड़की और उसके परिवार को अँधेरे में रख उसका विवाह तपेदिक की 'जानलेवा' (शायद मूल कहानी के लिखे जाने के दौर में तपेदिक यानी टी.बी. ऐसी 'जानलेवा' बीमारी होती होगी। अब तो इसका आसान इलाज उपलब्ध है।) और संक्रामक रोग से ग्रसित व्यक्ति से करा दिया जाता है। विवाह की पहली रात को ही वह व्यक्ति अपनी वधू को यह बात बताता है कि उसके नजदीक आने से वधू को भी संक्रमण हो सकता है। कहता है कि वह विवाह कर दूसरे की जिंदगी बर्बाद नहीं करना चाहता था, पर माँ-बाप ने 'मेरे वीरान जीवन में कुछ खुशियाँ लौटने' की उम्मीद में शादी करवा दी। वधू भी आदर्श नारी की तरह तुरंत इस 'तकदीर' को स्वीकार कर लेती है कि मन एक हो गए और शरीर को दूर रखना है! अगले दिन से ही पति, उसका सारा परिवार और उन सभी का एक घनिष्ठ पारिवारिक मित्र इस 'आदर्श' स्थिति से प्रसन्नचित्त हो जाते हैं। थोड़े दिनों में पति की मृत्यु हो जाती है। कुछ महीने दुख में कटते हैं। एक दिन अपनी ननद के स्कूल के किसी समारोह के लिए उसकी मनुहार पर विधवा पत्नी एक सुंदर लाल बिंदी लगाती है। मृतक पति का पारिवारिक मित्र विधवा पत्नी को 'प्रपोज' करता है कि 'अब यह बिंदी तुम्हारे माथे से कभी नहीं हटेगी' और 'मुझसे अशोक (मृतक) को या अशोक को मुझसे अलग न समझो' और 'वह विवाह भी कोई विवाह था, अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है'! और पत्नी के बिना किसी प्रतिरोध के यह प्रणय प्रस्ताव को स्वीकार कर, प्यार के साथ 'ओ...ह महेंद्र' कहते ही नाटक खत्म होता है।

अंतिम कथा-रूपांतर एक गुजराती लोक कथा का है। कठोर-हृदय, निर्दयी लुटेरे जेसल का हृदय-परिवर्तन करने के उद्देश्य से उसकी भाभी उसे सांसतिया काठी नाम के एक ईश्वर-भक्त की रूपवती पत्नी तोरल और उसकी घोड़ी को भगा लाने की चुनौती देती है। सांसतिया को अपनी पत्नी के पतिव्रत की शक्ति पर भरोसा है। बिना किसी प्रतिरोध के वह अपनी पत्नी, तलवार और घोड़ी को जेसल को सौंप देता है। रास्ते में नदी पार करते समय तूफान आने से नाव डूबने का खतरा नजर आता है। जहाँ डाकू जेसल आसन्न मृत्यु के भय से आतंकित हो जाता है, पतिव्रता तोरल अविचलित रहती है। निर्दयी डाकू का हृदय-परिवर्तन होता है, वह अपने द्वारा मारे-सताए गए लोगों की वेदना और भय के बारे में सोचकर ग्लानि और प्रायश्चित की भावना से भर जाता है और भक्ति की राह पर चल पड़ता है। कथा में सज्जनता और शुचिता द्वारा बुराई के अच्छाई में बदलने के लोक जीवन में बसे संदेश के भाव को दर्शाया गया है।

पुस्तक की भाषा सहज-सरल है।

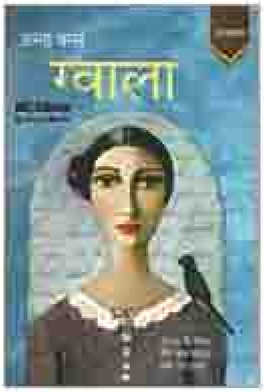

समीक्षक : [illegible]

लेखिका : अन्ना बर्न्स

अनुवादिका : अनुपमा 'ऋतु',

उपमा 'ऋचा'

प्रकाशक : संवाद प्रकाशन, मेरठ।

पृष्ठ : 364

मूल्य : रु. 300/-

ग्वाला

मैंने पिछले 50 साल में अनेक भारतीय एवं विदेशी उपन्यासकारों के उपन्यास पढ़े, लेकिन जब अन्ना बर्न्स का उपन्यास 'मिल्कमेन' हिंदी में 'ग्वाला' के नाम से मेरे सामने आया तो मैं उलझकर रह गया। 'ग्वाला' शीर्षक आपको आकर्षित कर अपने आप में ऐसा उलझाता है कि आप उससे बाहर नहीं निकल सकते। अन्ना ने ज्यादा नहीं लिखा, लेकिन जितना लिखा उतना अद्भुत लिखा। ग्वाला भी अन्ना का इसी तरह का एक विशिष्ट उपन्यास है।

'ग्वाला' की पृष्ठभूमि आयरलैंड की राजनीतिक, सामाजिक जीवन की उन तमाम त्रासदियों के इर्द-गिर्द घूमती है। संयोग यह है कि इस उपन्यास का धरातल भारत की सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों से बहुत मेल खाता है। इसी कारण आप इस उपन्यास को यदि एक बार हाथ में ले लेते हैं तो उसे छोड़ नहीं सकते। ग्वाला अन्ना के अंग्रेजी उपन्यास मिल्कमेन का हिंदी रूपांतरण है। इस उपन्यास का नायक अपने नाम के अनुरूप नहीं है। यदि छद्म नाम अथवा सांकेतिक नाम के नजरिये से बात की जाए तो 'ग्वाला' नाम रहस्यमय है। यह एक ऐसा नाम है जो कभी प्रतीकात्मकता से परे लगता है तो कभी एकदम से जाना-पहचाना और कभी-कभी बिलकुल घिसा-पिटा भी।

ग्वाला में आप एक औपनिवेशक समाज की त्रासदियों का अनुभव करते हुए आगे बढ़ते हैं। उपनिवेश का समाज आदमी की आत्मा को कैसा बना देता है? व्यक्ति का सामाजिक जीवन अपनी स्वाभाविकता कैसे खोता है, यह ग्वाला के जरिये आप जान सकते हैं, लेकिन इसके लिए एक पाठक के तौर पर आपको अतिरिक्त श्रम करना पड़ेगा, क्योंकि यह उपन्यास आम उपन्यासों से हटकर है। आत्मकथ्यात्मक शैली का यह उपन्यास इसलिए भी सार्थक बन पड़ा है क्योंकि इसकी लेखिका एक स्त्री है और उसकी दृष्टि भी स्त्री वाली है। ग्वाला के जरिये आप आयरलैंड की राजनीति, समाज और जीवन के अनेकानेक आयामों का स्पर्श करते हुए आगे बढ़ेंगे। ग्वाला के पात्र जटिल हैं, कथ्य जटिल है जो कभी-कभी पाठक की एकाग्रता की परीक्षा लेते दिखाई देते हैं।

एक पाठक के रूप में यदि आपके पास धैर्य है तो ग्वाला को पढ़ने के बाद आपके मन से इसकी छाप कभी नहीं हट पाएगी। आप जैसे-जैसे इस उपन्यास में डूबेंगे, आपको लगने लगेगा कि आप आयरलैंड की नहीं, अपितु भारत की कहानी पढ़ रहे हैं। लेखिका ने पुस्तक के माध्यम से सामूहिक वेदना को शब्दों में जिस खूबसूरती से ढाला है उसकी जितनी सराहना की जाए, उतनी कम है।

अन्ना की कृति 'मिल्कमेन' का हिंदी में अनुवाद ग्वाला के रूप में करने वाली अनुपमा 'ऋतु' एवं उपमा 'ऋचा' ने सचमुच श्रमसाध्य काम किया है क्योंकि इस उपन्यास के कथ्य और पात्रों के गुंफन को देखते हुए इसका अनुवाद बहुत आसान तो बिलकुल नहीं था। इसी उपन्यास का एक उद्धरण देखिए—"हाँ, ...ये हुई न बात! 'उसने हौसला बढ़ाया,' तुम न अपने आलस का इस्तेमाल करो, ज़िद छोड़ दो। अपने तापमान पर ध्यान दो, मेरा मतलब ये जो हर समय ऊँचे घोड़े पर सवार रहती हो न, उससे नीचे उतरो और थोड़ा दोस्ताना अंदाज दिखाओ, फिज़ूल-सा कुछ करो, कुछ ऐसा, जो उन्हें खामोशी की चादर में लपेट देने के बजाय संतुष्ट करे, और तुम अगर अपनी चलते हुए पढ़ने की आदत भी छोड़ दो, तब तो समझो हालात बदले ही बदले।"

पूरा उपन्यास पढ़ना एक दिमागी कसरत जैसा अनुभव है। इस उपन्यास को आप रेल में सफर करते हुए नहीं पढ़ सकते क्योंकि इसके लिए समग्र एकाग्रता अनिवार्य शर्त है।

इस उपन्यास के अध्याय अपेक्षाकृत लंबे हैं, संवाद बड़े-बड़े हैं, अनुच्छेदों का विस्तार भी कम नहीं है, सचमुच असाधारण भाषा-शैली और एक प्रयोगात्मकता ग्वाला को एक अभिनव उपन्यास बना देती है। ये उपन्यास आचार्य चतुरसेन शास्त्री के उपन्यासों जैसा बिलकुल नहीं है। इसमें आपको आयरलैंड में आठ शताब्दियों के सतत संघर्ष और बिखराव के चिह्न साफ दिखाई देने लगेंगे और तब आप विवश हो जाएँगे इसे आदि से अंत तक पढ़ने के लिए। इसे पढ़ते समय पाठक के मन-मस्तिष्क पर त्रासदी की एक ऐसी छवि बनेगी जो लंबे समय तक धुँधली नहीं हो सकती।

गंभीर विषयों के पाठकों के लिए ग्वाला एक बेहतरीन कृति है।

समीक्षक : राकेश अचल

लेखक : युवाल नोआ हरारी

अनुवादक : मदन सोनी

प्रकाशक : मंजुल पब्लिशिंग हाउस, भोपाल।

पृष्ठ : 426

मूल्य : रु. 450/-

होमो डेयस

यह सुखद संयोग है कि मशहूर लेखक युवाल नोआ हरारी की बहुचर्चित पुस्तक 'सेपियंस' का अंग्रेजी संस्करण कुछ ही महीने पहले मुझे पढ़ने का अवसर मिला। मैं अवकाश यात्रा पर पटना में था, वहीं मुझे यह पुस्तक हाथ लगी और पूरे एक पखवाड़े में सभी काम छोड़कर होमो डेयस को पढ़ता रहा। हरारी ने इतनी सरल अंग्रेजी में 'सेपियंस' की रचना की, इसे आद्योपांत पढ़े बिना मुझे चैन नहीं मिला। इस लिहाज से 'होमो डेयस' एक जरूरी किताब इसलिए भी है क्योंकि यह हमारे अतीत के साथ ही आने वाले कल का भी इतिहास है और इसे पढ़े बिना आप अपने आपको अधूरा ही अनुभव करेंगे। इतिहास में पीएच.डी. करना एक अलग बात है, लेकिन नोआ की तरह इतिहास का लेखन करना अलग बात है।

कुल तीन खंडों की इस किताब में जितनी रोचकता है उतनी शायद किसी उपन्यास में भी पाठकों को न मिले। मुझे खुशी है कि विख्यात अनुवादक श्री मदन सोनी ने 'होमो डेयस' में हरारी को जस का तस उतारकर रख दिया है। जितना सरस हरारी ने लिखा उतना ही सरस, सहज अनुवाद मदन सोनी ने किया। अकसर अनुवाद करते हुए लेखक की मूल कृति के साथ न्याय कर पाना आसान नहीं होता, किंतु इस किताब को पढ़ते हुए आपको कहीं ठहरना नहीं पड़ता। इतिहास लेखन की सबसे बड़ी खुसूसियत यह होती है कि आप उसे तथ्यों के साथ लेकर पाठक के पास पहुँचें। हरारी ने यह काम बखूबी किया है। उन्होंने अपने हर अध्याय में तथ्यों को चित्रों और भित्तिचित्रों के जरिये प्रामाणिक बनाने का अथक प्रयास किया है। इस किताब की रोचकता का अनुभव पहले ही अध्याय से होने लगता है।

दुनिया में होमो सेपियंस की विजय यात्रा के जितने भी रोमांचक और सनसनीखेज पड़ाव यह पुस्तक अपने पाठकों को पार कराती है, पाठक की रुचि उसमें बढ़ती ही जाती है। लेखक ने मनुष्य के युग और उसकी खूबियों का विस्तार से वर्णन करते हुए यह स्थापित किया है कि होमो सेपियंस दुनिया की सबसे ज्यादा ताकतवर प्रजाति है। लेखक यह बताने में सफल होता है कि 'मानव आत्माएँ विकसित नहीं हुई हैं, बल्कि किसी उज्ज्वल दिन में अपनी समूची महिमा के साथ प्रकट हुई हैं'।

पुस्तक का दूसरा भाग पाठक को उस दुनिया की सैर भी कराता है जिसे होमो सेपियंस ने नए अर्थ दिए। दूसरे खंड में लेखक इस अवधारणा को प्रतिपादित करता है कि सेपियंस भेड़ियों और चिंपांजियों जैसे जानवरों से अलग त्रिस्तरीय वास्तविकताओं में जीने वाले प्राणी हैं। सेपियंस की दुनिया में प्रकृति व भावनाओं से इतर और भी कहानियाँ हैं जो पैसा, देवता और राष्ट्र के साथ ही व्यावसायिक प्रतिष्ठानों से जुड़ी होती हैं। तीसरी सदी से 21वीं सदी तक की यात्रा को अपने आप में समेटे इस पुस्तक में मनुष्य के क्रमिक विकास और उसकी चुनौतियों का ऐसा जीवंत और तार्किक चित्रण किया गया है कि पाठक विस्मय से भर जाता है। होमो सेपियंस के आधुनिक अनुबंधों और क्रांतियों तक आपको लेकर आने वाले इस अध्याय में आप पाएँगे कि कैसे 2016 तक मानवजाति दोनों ओर से लाभ की स्थिति में रही है, न सिर्फ उसके कब्जे में अपूर्व शक्ति है, बल्कि सारी उम्मीदों के विपरीत देवता की मृत्यु सामाजिक विनाश का कारण नहीं बनी।

होमो डेयस के तीसरे और अंतिम अध्याय में आप उन तमाम हकीकतों से रू-ब-रू होते हैं जो आपके आस-पास तो हैं, लेकिन आप उनसे अनभिज्ञ हैं। लेखक खुद सवाल करता है और खुद ही उनका समाधान भी देता है, ऐसा कम ही लेखक कर पाते हैं। हरारी ने अपने अंतिम अध्याय में लिखा— '21वीं सदी का विज्ञान उदारवादी व्यवस्था की जड़ें खोद रहा है, क्योंकि विज्ञान मूल्यों के सवालों से नहीं जूझता इसलिए वह यह निर्धारित नहीं कर सकता कि उदारवादी स्वतंत्रता को समानता से ज्यादा मूल्यवान मानने या व्यक्ति को समूह से ज्यादा मूल्यवान मानने के मामले में सही है या नहीं'।

मानव जीवन की लंबी यात्रा के अब तक और आने वाले पड़ावों के बारे में हमें सचेत करती इस पुस्तक का पढ़ना अपने आप में एक अनूठा अनुभव है। अनुवादक ने इस गूढ़ विषय की रोचकता को हर पंक्ति में अक्षुण्ण रखा। संक्षेप में कहा जा सकता है कि मानसिक क्षितिज के विस्तार को पूरी तरह समझने के लिए होमो डेयस जैसी पुस्तकें अनमोल हैं। इस पुस्तक को हर घर के अध्ययन का अंग होना चाहिए।

समीक्षक : राकेश वत्स

लेखक : डॉ. प्रेमचंद्र स्वर्णकार

प्रकाशक : प्रभात पेपरबैक्स, नई दिल्ली।

पृष्ठ : 200

मूल्य : रु. 200/-

बच्चों को रोगों से कैसे बचाएँ

चिकित्सा जगत में हिंदी की बोधगम्य और आवश्यक पुस्तकों की बहुत कमी है। प्रभात पेपरबैक्स ने डॉ. प्रेमचंद्र स्वर्णकार की पुस्तक 'बच्चों को रोगों से कैसे बचाएँ' प्रकाशित कर इस अभाव को दूर करने में एक सही कदम उठाया है।

आज देश में बच्चों की एक बड़ी आबादी कुपोषण की शिकार है। देश में बाल मृत्यु दर बहुत अधिक है। मेडिकल जर्नल 'लैंसेट' की रिपोर्ट बताती है कि 2016 में पाँच वर्ष से कम आयु के नौ लाख बच्चों की मृत्यु भारत में हुई थी, जो कि विश्व में सबसे ज्यादा है। इसका प्रमुख कारण बच्चों के रोगों के बारे में सजगता का अभाव है। समय के साथ हालाँकि जागरूकता बढ़ी है और बाल मृत्यु दर में कमी भी आई है फिर भी अभी इस दिशा में बहुत काम किया जाना शेष है। डॉ. प्रेमचंद्र स्वर्णकार ने अपनी इस पुस्तक के जरिये बच्चों के रोगों के बारे में विस्तार से जानकारी देने के साथ ही उनके निदान और रोकथाम के विषय में बहुत ही सरलता से जानकारी देने का प्रयास किया है।

इस पुस्तक में बच्चों को आमतौर पर होने वाले संक्रमण से संबंधित रोगों के साथ ही पोलियो, टिटेनस, डिफ्थीरिया, खसरा, कुकर खाँसी, छोटी माता, गलसुआ, मस्तिष्क ज्वर, जापानी मस्तिष्क ज्वर, डेंगू, वात ज्वर, कृमि रोग, खुजली, एनीमिया, कुपोषण, मोतीझरा और रोटा वायरस से होने वाली बीमारियों के लक्षणों, पहचान और उनके निदान के बारे में विस्तार से जानकारी दी गई है।

पुस्तक के दूसरे भाग में कुपोषण की पहचान, कुपोषित बच्चों और गर्भवती माताओं के भोजन, भोजन में बरती जाने वाली सावधानियाँ जीवन रक्षक घोल, स्वच्छता, टीकाकरण और उसके लाभों के बारे में सब कुछ बताने का प्रयास किया है। पुस्तक में टीकाकरण की तालिका देकर लेखक ने पुस्तक को और उपयोगी बना दिया है।

लेखक चूँकि स्वयं पेशे से चिकित्सक हैं इसलिए वे इन सभी विषयों को आम बोलचाल की भाषा में समझाने में कामयाब हुए हैं। पुस्तक में दी गई जानकारी समझने के लिए सहायक चित्रों का भी भरपूर इस्तेमाल किया गया है। इससे कहीं कोई गफलत हो ही नहीं सकती। मेरे ख्याल से इस तरह की पुस्तकें हर परिवार की जरूरत हैं और इन्हें पाठ्यक्रमों का भी हिस्सा बनाया जा सकता है। सामान्यतः महिलाएँ भी इस पुस्तक को पढ़कर अपने बच्चों को विभिन्न तरह के रोगों से बचा सकती हैं। दुर्भाग्य यह है कि अभी देश में इस तरह का साहित्य सीमित संख्या में लिखा जा रहा है। आम आदमी को संतुलित भोजन के बारे में जानकारी नहीं है। पौष्टिक आहार के बारे में सामान्य तौर पर कोई जानता नहीं है इसीलिए शरीर रोगों का घर बन जाता है।

विराट से साक्षात्कार

समीक्षक : रमेश कुमार सिंह

लेखक : शैलेश कुमार मिश्र

प्रकाशक : मेधा बुक्स, दिल्ली।

पृष्ठ : 128

मूल्य : रु. 250/-

पर्वतराज हिमालय का हमारे धर्म और संस्कृति में व्यापक महत्व है। यह अध्यात्म और आस्था का आदि केंद्र है। इसी हिमालय में स्थित हैं चार पवित्र धाम यानी गंगोत्री, यमुनोत्री, केदारनाथ और बद्रीनाथ। विषम मौसम और दुर्गम पथ के बावजूद सदियों से श्रद्धालु यात्री हिमालय के तीर्थों की यात्रा करते रहे हैं।

इस पुस्तक में चतुर्धामों में से दो धामों-केदारनाथ और बद्रीनाथ की यात्रा का वृत्तांत है। लेखक के लिए यह देवभूमि उत्तराखंड की एक धार्मिक यात्रा है, लेकिन हिमालय की अनुपम छवि और स्वर्गिक सौंदर्य के दर्शन से उसका पर्यटक मन भी आनंदित है। उसके अनुसार, "केदार-बद्री की यात्रा जैसे एक पंथ-दो काज हैं—हिमालय यात्रा और भगवद्दर्शन।"

हरिद्वार हिमालय की चतुर्धाम-यात्रा का प्रवेश द्वार है। पुस्तक में केदारनाथ और बद्रीनाथ के यात्रा-मार्ग पर आए ऋषिकेश, देवप्रयाग, श्रीनगर, रुद्रप्रयाग, कर्णप्रयाग, नंदप्रयाग, विष्णुप्रयाग, गुप्तकाशी, रामपुर, सोनप्रयाग, भीमबली, गौरीकुंड आदि पावन स्थानों की सांस्कृतिक महिमा की चर्चा भी की गई है। हिमालय में स्थित सिक्खों के पवित्र तीर्थ हेमकुंड साहिब का वर्णन भी इस पुस्तक में है।

लेखक पहले शैव तीर्थ केदारनाथ पहुँचता है। यह मंदिर 12 ज्योतिर्लिंगों और पंचकेदार में से एक है। यह उत्तराखंड के रुद्रप्रयाग जिले में मंदाकिनी नदी के तट पर है। लगभग 75 फीट ऊँचा यह मंदिर उत्तराखंड का विशालतम शिवमंदिर है। मान्यता है कि इस मंदिर का निर्माण पांडवों ने करवाया था। 2013 की भीषण

प्राकृतिक आपदा में पूरी केदार घाटी तबाह हो गई थी, किंतु यह मंदिर सुरक्षित रहा।

केदार-दर्शन के बाद लेखक भगवान विष्णु को समर्पित 'वैकुंठ' कहलाने वाले तीर्थ बद्रीनाथ जाता है। बदरी का अर्थ है—बेर का वृक्ष। मान्यता है कि यहाँ लक्ष्मी ने विशाल बदरीवृक्ष का रूप धारण कर तपस्यारत भगवान विष्णु को विघ्नों से बचाया था। श्रद्धालु मानते हैं कि यहाँ की यात्रा से समस्त पाप धुल जाते हैं और पुण्य मिलता है। केदार-बद्री के दर्शन से लेखक का आस्थावान मन तृप्त हो जाता है, लेकिन पर्यटक मन नहीं। वह महाभारतकार वेदव्यास की गुफा और भारत के सीमांत गाँव माणा को देखने निकल पड़ता है।

इस यात्रा में तीर्थ-स्थलों के साथ-साथ विराट हिमालय के दर्शन भी होते हैं। लेखक के अनुसार, "...हिमालय हमारी संस्कृति, हमारी आस्था, हमारी शक्ति, हमारी आध्यात्मिकता की ऊँचाई का प्रतिरूप है।...देवताओं का आश्रय है...घुमक्कड़ों, अन्वेषकों, साधकों और श्रद्धालुओं का प्रधान तीर्थ है।...हिमालय दर्शन और सौंदर्य के ताने-बाने से बुनी ईश्वर की एक श्रेष्ठ कविता है जिसे पढ़कर ठीक-ठीक समझ पाना किसी साधक हृदय महामनीषी के बूते की बात है।...हिमालय का अंतस्तल जितना दिव्य और सौंदर्यशाली है उतना ही बाह्य स्वरूप भी। सूर्य की स्वर्णिम प्रभा से भारत-भू का हिमकिरीट जब स्वर्णमुकुट बन जाता है तब उसकी छवि स्वर्गिक बन जाती है।"

हिमालय के अनेकानेक अनुपम वैभवों में से एक विश्वप्रसिद्ध फूलों की घाटी का वर्णन भी पुस्तक में है। यहाँ सैकड़ों तरह के फूल खिलते हैं। इस अद्भुत स्थान की खोज सन् 1931 में एक ब्रिटिश पर्वतारोही ने की थी। महाभारत में वर्णित गंधमादन पर्वत भी संभवतः यही है। अब यह एक राष्ट्रीय उद्यान है और विश्व धरोहरों में से एक है।

विश्व के इन सर्वोच्च शिखरों की गोद से निकलती हैं कलकल करती सदानीरा नदियाँ, जो उत्तर भारत को उर्वर शस्य श्यामला भूमि बनाती हैं और जिनके किनारे तीर्थों की शृंखला है। पुस्तक में उत्तराखंड की अनेकानेक नदियों की चर्चा है। 'एक अंतःसलिला की गाथा' शीर्षक अध्याय में पौराणिक नदी सरस्वती का वर्णन है। गंगा और यमुना की तरह पवित्र मानी जाने वाली सरस्वती नदी लुप्त हो चुकी है। वेदों, पुराणों और महाभारत में इस नदी का वर्णन है। भीमशिला को इसका उद्गम और विलुप्ति-स्थल माना जाता है।

कहते हैं, एक चित्र हजार शब्दों के बराबर होता है। लेखक ने जगह-जगह अपने द्वारा की गई फोटोग्राफी की चर्चा की है। लेकिन किताब में उत्तराखंड की प्राकृतिक सुषमा, जो लेखक के अनुसार, धरती के स्वर्ग कश्मीर से किसी मायने में कम नहीं है, का कोई चित्र नहीं है। बद्री-केदार के मंदिरों के भी नहीं। यह भी कहा जाता है कि पहाड़ खूबसूरत होते हैं, किंतु वहाँ जन-जीवन में पहाड़ जैसे दुख भी होते हैं। यात्रा-क्रम में लेखक की निगाह स्थानीय लोगों के जीवन की ओर कम गई है।

भारत को सांस्कृतिक सूत्र में बाँधने वाले आदिशंकराचार्य आठवीं सदी में सुदूर दक्षिण से केदारनाथ-बद्रीनाथ की यात्रा के लिए आए थे। माना जाता है उन्होंने केदारनाथ के मंदिर का जीर्णोद्धार करवाया था। पुस्तक में आदिशंकर के जीवन और रचनाओं के कई प्रसंग हैं। पुस्तक में प्रसंगानुसार अनेक साहित्यिक सूक्तियाँ और उद्धरण हैं। वेद, पुराण, महाभारत और उपनिषद के साथ-साथ पाठक इसमें कालिदास, कबीर, पंत, प्रसाद, बच्चन, नेपाली, राहुल सांकृत्यायन, दिनकर आदि की पंक्तियों का भी रसास्वादन करेंगे।

देश-विदेश के लाखों श्रद्धालु और पर्यटक प्रतिवर्ष बद्री-केदार की यात्रा करते हैं अथवा करना चाहते हैं। यह पुस्तक पाठकों को इन तीर्थों की मनोयात्रा कराएगी और वास्तविक यात्रा के लिए भी प्रेरित करेगी।

जीवन धारा

संपादक : रमेश कुमार सिंह

लेखिका : रेनू सैनी

प्रकाशक : प्रभात पेपरबैक्स, नई दिल्ली।

पृष्ठ : 190

मूल्य : रु. 200/-

भारत में आधुनिक पुलिस प्रशासन का प्रारंभ ब्रिटिश शासनकाल में हुआ। औपनिवेशिक पुलिस की भूमिका दमनकारी और सत्ता-उन्मुख थी। स्वतंत्र भारत में पुलिस की सामंती मानसिकता को बदलकर उसे जन-उन्मुख बनाने के लिए पुलिस-प्रणाली में कई सुधार किए गए। नवीनतम तकनीक से लैस पुलिस की भूमिका अब अपराध के प्रति प्रतिक्रिया से अधिक उसके नियंत्रण और रोकथाम की हो गई है। इसका एक उदाहरण पिछले कुछ वर्षों में विकसित यूपी-100 नाम की आपातकालीन पुलिस सेवा-प्रणाली है। 2016 में शुरू की गई यूपी-100 की यह सेवा उत्तर प्रदेश के निवासियों के लिए हर समय उपलब्ध रहती है।

रेनू सैनी लिखित 'जीवन-धारा' संग्रह की कहानियाँ यूपी-100 के सजग और कर्मठ पुलिसकर्मियों द्वारा नागरिकों की सहायता की सत्य-घटनाओं पर आधारित हैं। इस पुस्तक में विविध घटनाओं पर आधारित 56 कहानियाँ हैं।

आपात स्थिति में यूपी-100 नंबर पर फोन करके अथवा किसी भी संचार माध्यम के द्वारा सूचना भेजी जा सकती है। यह सूचना लखनऊ स्थित यूपी-100 के अति आधुनिक कॉल सेंटर पर पहुँचती

है। वहाँ से यह घटनास्थल के निकटतम पी.आर.वी. (पुलिस रिस्पांस वेहिकल) यानी पुलिस की गाड़ी को भेजी जाती है। पी.आर.वी. की टीम जी.पी.एस. तकनीक की सहायता से यथाशीघ्र घटनास्थल पर पहुँच जाती है। यह सेवा यूपी-100 ऐप पर भी उपलब्ध है। इस ऐप में अपना पता और अन्य इमरजेंसी संपर्क नंबर फीड करके रखे जा सकते हैं। इससे आपात स्थिति की सूचना पुलिस के साथ-साथ ऐप में दर्ज फोन नंबर तक भी पहुँच जाती है।

यूपी-100 के पास प्रतिदिन तरह-तरह की हजारों शिकायतें आती हैं। पी.आर.वी. में तैनात पुलिसकर्मी कुछ मिनटों में घटनास्थल पर पहुँच जाते हैं। पुलिस हर जगह शीघ्र पहुँच सकती है, यह विश्वास आम नागरिकों के मन में सुरक्षा की भावना जगाती है और अपराधियों में खौफ पैदा करती है।

लेखिका ने यूपी-100 की उपलब्धियों और कार्यप्रणाली से जुड़ी घटनाओं को सरल कहानियों के रूप में प्रस्तुत किया है। ये कहानियाँ आम लोगों के जीवन से जुड़ी हैं। संवाद स्वाभाविक हैं। घटनाओं में विविधता है। लेखिका ने इन्हें रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है। संग्रह की सभी कहानियों में यूपी-100 द्वारा समस्या का सफल समाधान दिखाया गया है। ये कहानियाँ सुखांत हैं, इतनी सुखद और सुखांत कि कई तो गढ़ी हुई लगती हैं। निश्चित रूप से ये सप्रयत्न चुनी हुई घटनाएँ हैं, क्योंकि वास्तविक जीवन में पुलिस के संज्ञान में आए सभी मामलों की ऐसी सहज-सफल-सुखद परिणति नहीं होती। पुलिस को शिकायतों के समाधान में शत-प्रतिशत सफलता नहीं मिलती, लेकिन यहाँ उसकी कामयाबी-ही-कामयाबी दिखाई गई है। यूपी-100 में पुलिस झूठी शिकायतों और प्रभावशाली लोगों के हस्तक्षेप से कैसे निपटती है, इसकी कहानियाँ भी होनी चाहिए थीं।

प्रथम पाठ में यह एक प्रायोजित पुस्तक लगती है, जो यूपी-100 की सफलता के प्रचार के लिए लिखी गई है। लेकिन ये कहानियाँ सेवा और कर्तव्य के प्रति तत्पर पुलिस के उस सकारात्मक पक्ष को भी दिखाती हैं जिसकी आमतौर पर चर्चा नहीं होती। ये पुलिसकर्मी सुरक्षा का अहसास कराते हैं और शांति, सद्भावना तथा देशप्रेम की प्रेरणा देते हैं।

यूपी-100 परियोजना से जनता और पुलिस के परस्पर दृष्टिकोण में सकारात्मक बदलाव आया है। इससे लोगों में पुलिस के प्रति विश्वास बढ़ा है। यूपी-100 में की गई शिकायतें रिकॉर्ड होती हैं, यथारूप सुरक्षित रखी जाती हैं, विश्लेषित की जाती हैं और भविष्य में साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत की जा सकती हैं। अतः उन पर कार्रवाई करना पुलिस के लिए बाध्यकारी होता है। इस कारण पीड़ित के मन में उत्पीड़क की शिकायत करने पर उल्टे प्रताड़ित किए जाने का डर दूर हुआ है। साथ ही, पुलिस की छवि अब सहयोग के लिए तत्पर मित्र जैसी बन रही है।

आधुनिक संचार तकनीक और उसके सदुपयोग की नीयत से शुरू की गईं ऐसी सेवाएँ अति उपयोगी सकती हैं। तकनीक यूपी-100 परियोजना की आँख और कान है। तकनीक के सेतु से पुलिस और जनता का मिलन होता है। किंतु तकनीक आधारित सेवाओं की एक आवश्यकता और सीमा यह है कि इसके साधन, यथा, मोबाइल फोन, उसका नेटवर्क, इंटरनेट आदि हर समय और हर जगह उपलब्ध हों। यह भी कि समाज के अंतिम व्यक्ति तक ये उपलब्ध हों तथा वह व्यक्ति इनके उपयोग की विधि जाने एवं वह निर्भय वातावरण में इनका उपयोग कर सके। वास्तव में निर्भय वातावरण का निर्माण ही पुलिस का सबसे बड़ा दायित्व है।

यूपी-100 परियोजना अपनी टैगलाइन—'शहर या देहात, दिन हो या रात, यूपी-100 है सबके साथ' को सार्थक कर रही है। इसके साथ अग्निशमन, एंबुलेंस आदि अन्य सेवाओं के जोड़े जाने से यह एकीकृत आपदा प्रबंधन सेवा बन गई है। विशाल क्षेत्रफल और 20 करोड़ से भी अधिक आबादी वाले उत्तर प्रदेश जैसे राज्य में ऐसी परियोजना का प्रवर्तन प्रशासन के संकल्प का परिणाम है। ऐसे ही संकल्प की आवश्यकता इसके निरंतर परिचालन और सुधार के लिए भी होगी। यूपी-100 की सफलता को देखते हुए अब एकल इमरजेंसी सेवा नंबर 112 शुरू की गई है। यह पुस्तक पाठकों को इस परियोजना की उपादेयता के प्रति जागरूक करेगी।

प्यारी धरती

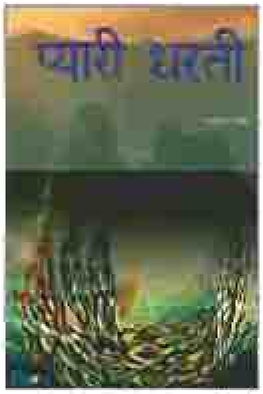

समीक्षक : वीरेन्द्र कुमार चौधरी

लेखक : राजेन्द्र निशेश

प्रकाशक : अभिषेक पब्लिकेशंस, चंडीगढ़।

पृष्ठ : 70

मूल्य : रु. 395/-

किसी काव्य समीक्षक ने कहा था—'कविता भावों का स्वतः स्फूर्त उच्छलन है।' यह बात अक्षरसह सत्य है। एक कवि जब कविता लिखने बैठता है तो वह ऐसा कर लेगा, कोई आवश्यक नहीं। क्योंकि कविता लिखने के लिए मात्र कवि का होना आवश्यक नहीं, बल्कि उसके लिए विषय का होना भी जरूरी है। लेकिन सही मायने में देखा जाए तो कवि के लिए यही वह परिस्थिति है जिसमें वह अपने आपको बेहद कठिन दौर से गुजरता पाता है। कारण, कवि एक भावुक आत्मा है और उसके सामने विषय की बहुलता होती है। भावना ही वह तत्व है जिसने महर्षि वाल्मीकि को रामायण जैसे

महाकाव्य का रचयिता बना दिया था और उनकी यह भावना एक व्याधे के द्वारा एक कौवे का शिकार करना और उसके विरह में कौवी (मादा कौआ) का रोना था। तात्पर्य यह कि कवि, विषय और भावना का समन्वय ही एक कवि के कवित्व को निखारने का काम करती है।

राजेन्द्र निशेश की पुस्तक 'प्यारी धरती' जो एक कविता संग्रह है। पुस्तक में जिन कविताओं का संकलन किया गया है वे अत्यंत रोचक विषय हैं। वर्तमान समय की वैज्ञानिक प्रगति ने मनुष्य-मनुष्य के बीच ऐसी आपसी प्रतिस्पर्धा को जन्म दिया है कि लोग अपने और अपने परिवार तक सीमित हो गए हैं। तब प्रतिस्पर्धा यहीं पर ठहर जाती तो कुछ समझौता किया भी जा सकता था। यह प्रतिस्पर्धा, आपसी मनमुटाव और रंजिश कई बार अपने घृणित रूपों में हमारे सामने उभर आती है। इसका सबसे बड़ा कारण है आर्थिक पक्ष को पारिवारिक एवं सामाजिक पक्ष से अधिक महत्व देना। यही वजह है कि लोग संयुक्त परिवार से कटकर एकल परिवार के तौर पर रहने लगे हैं। पति-पत्नी और बच्चे, यही है आज का परिवार। ऐसा भी देखा जा रहा है कि हमारे देश में भी पाश्चात्य सभ्यता का अंधा अनुकरण करते हुए आज के युवा जब अपना परिवार बसाते हैं तो उसमें माता-पिता के लिए भी स्थान संरक्षित नहीं रख पाते। इसके कई पहलू हैं जिसमें नौकरी की मजबूरी को हम सर्वोपरि मान लेते हैं, पर यह इतना भी बड़ा कारण नहीं है। कम-से-कम छुट्टियों के दिनों में तो हम अपने बच्चे को अपने पैतृक परिवार के साथ ही अन्य रिश्तेदारों से भी तो परिचित करा सकते हैं, पर ऐसा नहीं होता। हम इसे आर्थिक मजबूरी का नाम दे देते हैं। हम हिल स्टेशन जाते समय आर्थिक पहलू को महत्व नहीं देते। लेकिन इस आर्थिक आपाधापी में हम यह भूल जाते हैं कि हमारे बच्चों की जो बेहतर परवरिश संयुक्त परिवार में हो सकती है, जो ज्ञान उसे उस स्थिति में मिलता, जो भावनात्मक लगाव उसे वहाँ नसीब होता, वह सब उसके हिस्से से हम ही छीन रहे हैं। समाज क्या है, प्रकृति क्या है, जीव-जंतुओं का विस्तृत ज्ञान, नानी-दादी की कहानी और नुस्खे, हमारे धार्मिक क्रियाकलापों, उसके पारंपरिक महत्वों आदि बातों का वह ज्ञान उसे नहीं मिल पाता है जिसकी उसे जरूरत है। कवि ने इन्हीं विषयों को इस कविता के माध्यम से छूने का प्रयास किया है।

पुस्तक में कविताओं को संकलित करते वक्त कवि ने बड़ी समझदारी दिखाई है और पहला विषय ही धरती को रखा है। वे लिखते हैं—

'निराली और प्यारी धरती
रहस्य भरी हमारी धरती
झंझावात कभी हैं आते
फिर भी लगे दुलारी धरती।

इस कविता में कवि ने न केवल पृथ्वी के तत्वों को छुआ है, बल्कि इसके माध्यम से खासकर बच्चों को पृथ्वी की सुंदरता को निखारने में किन-किन प्राकृतिक कारणों का अमूल्य योगदान है, उसे भी बताना नहीं भूलते। चाँद, सूरज, पर्वत, सागर, नदियाँ, वन और अंत में जाकर इसे प्रदूषित करने और नष्ट करने में मानवों द्वारा किए गए कार्यों का भी बड़ी सुंदरता के साथ कम शब्दों में सटीक वर्णन किया है तथा इसे बचाना भी हमारी ही जिम्मेदारी है, यह बात भी कवि समझाने से नहीं चूकते। 'मेरी पतंग' कविता में पतंग के प्रति बच्चों का लगाव और उसकी कलाबाजियों, 'बंदर जी' कविता में बंदर के नैसर्गिक गुणों, ज्वलंत विषय ग्लोबल वार्मिंग को लेकर 'गरमाती धरती' शीर्षक कविता के माध्यम से इसके दुष्प्रभाव एवं उसे रोकने के उपायों की चर्चा, अंधाधुंध पेड़ों की कटाई के दुष्परिणामों की चर्चा के साथ ही उसे रोकने हेतु वृक्षारोपण एवं पेड़ों के संरक्षण की आवश्यकता आदि विभिन्न विषयों पर कवि राजेन्द्र निशेश ने अपनी कलम चलाई है और जिन भी विषयों को उठाया है, उसका सटीक वर्णन करते हुए उसके सुखद अथवा दुखद परिणामों की चर्चा एवं मानवता और प्रकृति पर मानवीय कृत्यों के दुष्प्रभावों को कैसे कम किया जाए, इस बिंदु पर भी चर्चा की है।

बाल मनोविज्ञान के नजरिये से कवि ने जिन भी विषयों को छुआ है, उसका इतना सटीक और सजीव चित्रण किया है कि चाहे बूढ़े हों या बच्चे या फिर अन्य आयु वर्ग के लोग, इस कविता संग्रह को जब एक बार हाथ में लेते हैं और पन्ने पलटेंगे तो पुस्तक का अंत करके ही दम लेंगे। रोचक विषयों का चयन, उसका वर्णन और इस रोचकता का शुरू से अंत तक एक समान बनाए रखना अपने आप में बहुत बड़ी चुनौती है और कवि ने उस चुनौती को न केवल स्वीकार किया, बल्कि बखूबी उसके साथ संघर्ष करते हुए सिद्धहस्त प्राप्त किया। कविता की भाषा सहज, सरल एवं सुबोध्य है जिसके चलते छोटे-से-छोटा बच्चा हो या कोई बुजुर्ग व्यक्ति, सभी के लिए पाठ्य है। इस पुस्तक के माध्यम से कवि ने बच्चों के लिए गागर में सागर भरने का काम किया है। निश्चय ही यह न केवल पढ़ने योग्य पुस्तक है, बल्कि घरों में संकलित कर रखने योग्य भी है।

समीक्षक : बीरेन्द्र कुमार चौधरी

लेखक : असग़र वजाहत

प्रकाशक : राजपाल एंड सन्ज़, दिल्ली।

पृष्ठ : 208

मूल्य : रु. 395/-

स्वर्ग में पाँच दिन

महान साहित्यकार, प्रकांड विद्वान, यायावार, राष्ट्रचिंतक पंडित राहुल सांकृत्यायन ने अपने प्रसिद्ध निबंध 'अथातो घुमक्कड़ जिज्ञासा' में मनुष्य की यायावारी प्रवृत्ति को जमकर प्रश्रय देते हुए कहा है कि मनुष्य को सब कुछ भूलकर घूमना चाहिए। उन्होंने ऐसे माता-पिता को अपने संतान का दुश्मन बताया है जो उनके घूमने के रास्ते में रोड़ा अटकाते हैं। कारण, संसार के अन्य प्राणियों की तरह मनुष्य भी अपने आदि काल से ही घुमंतू रहा है। अन्य प्राणी जहाँ अपने उदर पूर्ति एवं जीवन रक्षा के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटकता है, जबकि मनुष्य के मामले में ऐसा नहीं है। मनुष्य चूँकि एक संवेदनशील प्राणी है अतः वह जहाँ कहीं जाता है उन परिस्थितियों, परिवेशों, वहाँ के संसाधनों, भौगोलिक उच्चावचों, समाज की वस्तुस्थितियों, जिसमें विभिन्न अवधारणाएँ, ज्ञान-विज्ञान, धर्म-संस्कृति, कला-साहित्य, आदि के बारे में गहराई से जानकारी इकट्ठा करता है और उन जानकारियों के आधार पर अपने अनुभवों को अन्य जनों के साथ बाँटता है। फिर वह जानकारी मौखिक हो या लिखित, समाजोपयोगी होती है। यही जानकारी समय के साथ पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे हस्तांतरित होती जाती है। लेकिन यहाँ उल्लेखनीय है कि अन्य जीवों की तुलना में मनुष्य के अधिक ज्ञानी होने के कारण वह अपने जंगली जीवन से निकलकर एक सभ्य जीवन तक का सफर तय कर चुका है। संसार की समस्त सभ्यताओं को आकार देने का काम भी मनुष्य ने ही किया है।

दिल्ली स्थित जामिया मिल्लिया इस्लामिया विश्वविद्यालय से हिंदी विभाग के विभागाध्यक्ष के पद से सेवानिवृत्त विख्यात साहित्यकार असग़र वजाहत की पुस्तक 'स्वर्ग में पाँच दिन' इनके हंगरी प्रवास के दौरान बिताए गए पाँच वर्षों के लंबे समयांतराल के खट्टे-मीठे अनुभवों पर आधारित पुस्तक है। यह एक यात्रा वृत्तांत है। वजाहत पहली बार 1989 में हंगरी घूमने गए थे और 1992 में दुबारा हंगरी गए जहाँ 1997 तक आई.सी.सी.आर. की ओर से विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में 'ओत्वोश लोरान्द विश्वविद्यालय' के यूरोपीय अध्ययन विभाग में कार्य किया। इन पाँच सालों को उन्होंने स्वर्ग में बिताए एक दिन के समान गिना। असग़र लिखते हैं—"बुडापेस्ट में पाँच साल रहने के बाद ऐसा लगा जैसे पाँच साल नहीं, बल्कि पाँच दिन ही रहा।"

हंगरी की प्राकृतिक सुंदरता, वहाँ के लोगों का हाव-भाव और विचार, वहाँ की सुंदर औरतें, बुढ़ापे में अकेलापन आदि विभिन्न पहलुओं पर लेखक ने विस्तार से चर्चा की है। अनजाना इतिहासकार के माध्यम से उन्होंने हंगरी के संक्षिप्त इतिहास को बताया है। दरअसल हंगेरियन लोग अपने आपको एशियाई मूल के मानते हैं और उनका भारत के प्रति विशेष आकर्षण है। लेखक ने इस बिंदु पर गहराई से दृष्टिपात किया है। इतिहासकारों के अनुसार यूराल पहाड़ों के आस-पास बसी एक जनजाति हजारों साल पहले वहाँ से पश्चिम की दिशा में कूच कर गई थी। यही जनजाति आठवीं से नवीं शताब्दी के आस-पास मध्य यूरोप के इस भू-भाग में आकर बस गई। यह जनजाति अपने आपको 'मग्यर' कहती थी। इसे लेकर लंबे समय तक यह भी धारणा थी कि यह हूण जाति का बड़ा हिस्सा यूरोप की ओर चला गया था और दूसरा हिस्सा भारत की ओर। लेकिन समाजशास्त्रीय अध्ययन के आधार पर जो निष्कर्ष सामने आया, उसके अनुसार यह माना जाने लगा है कि वे सिर्फ हूण नहीं बल्कि दो जनजातियाँ थीं जिसमें से मग्यर यूरोप की ओर चला गया और हूण भारत की ओर।

तुर्की भाषा में हंगरी को 'मग्यारिस्तान' कहते हैं जो मग्यर शब्द से बना है। 10वीं शताब्दी के आस-पास मग्यर जनजाति ने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया और इस प्रकार वे यूरोप की मुख्यधारा में शामिल हो गए। मात्याश के शासनकाल (1458-1490) को हंगेरियन इतिहास का स्वर्ण युग माना जाता है, लेकिन 20वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में हुए दोनों विश्वयुद्ध ने हंगरी के आकार को घटाकर दो-तिहाई कर दिया था। लेखक लिखते हैं कि सोवियत संघ का अंग बनने के बाद हंगरी का विकास मार्क्सवादी पद्धति पर किया गया, लेकिन सोवियत संघ के विघटन के बाद विनिवेशीकरण के कारण हंगरी में औने-पौने दाम पर सरकारी उद्योगों आदि के अधिग्रहण के बारे में बताया है।

हंगरी की प्राकृतिक सुंदरता को देखकर लेखक के मन में सौंदर्य-प्रेमी मुगल बादशाह शाहजहाँ की कश्मीर पर कही बात 'गर फिरदौस बर-रू-ए-ज़मीं अस्तो, हमीं अस्तो, हमीं अस्तो, हमीं अस्त।' अर्थात, 'धरती पर यदि कहीं स्वर्ग है तो यहीं है, यहीं है, यहीं है।' वे कहते हैं कि यदि शाहजहाँ ने हंगरी को देखा होता तो अवश्य ही ऐसा कहता। हंगेरियन खान-पान एवं रहन-सहन का जो जीवंत चित्रण लेखक ने किया है, उसे पढ़कर ऐसा आभास होता है कि हम भारत में नहीं, बल्कि हंगरी में हैं। हमारा मन अनायास ही हंगरी जाने को करने लगता है।

यदि भाषा-शैली की दृष्टि से देखा जाए तो इसकी भाषा अत्यंत सहज, सरल और सुबोध्य है। जहाँ कहीं हंगेरियन, उर्दू, फारसी या अन्य किसी भाषा का प्रयोग हुआ है, पाठकों को समझाने के लिए उसका हिंदी अनुवाद भी दिया है। कुल मिलाकर यह पुस्तक रोचक, पठनीय, ज्ञान से परिपूर्ण है। पाठक इस पुस्तक को बार-बार पढ़ने के लिए अनायास ही खिंच जाएँगे। कुल मिलाकर लेखक ने अपने संपूर्ण रचनाकार जीवन के अनुभव को इस पुस्तक में उड़ेलने में कोई कसर नहीं छोड़ी है।

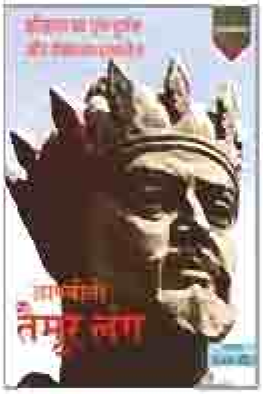

सम्पादक : सतीश कुमार चौधरी

अनुवादक : संध्या कौल

प्रकाशक : संवाद प्रकाशन, मेरठ।

पृष्ठ : 548

मूल्य : रु. 400/-

आपबीती

तैमूर लंग

भारत न केवल सभ्यता और संस्कृति की दृष्टि से समृद्ध था, बल्कि आर्थिक दृष्टि से भी अत्यंत समृद्ध था। ऊनी, रेशमी, सूती एवं अन्य वस्त्रों के साथ ही गरम मसाले आदि विभिन्न प्रकार के उत्पादों का व्यापार भारतीयों द्वारा सुदूर पश्चिम, मध्य एशिया एवं यूरेशियन देशों के साथ किया जाता था। एक समय था जब ढाका के मलमल की माँग काफी बढ़ गई थी और उसके बदले मिस्र आदि देशों से आने वाले सोने एवं अन्य बहुमूल्य रत्नों के मद्देनजर वहाँ के बुद्धिजीवियों ने सम्राट से इस पर ध्यान देने के लिए आग्रह किया था। नाव बनाने की कला से लेकर लौह आदि विभिन्न धातुओं के परिष्करण का हमारा ज्ञान पूरी दुनिया को आकर्षित करता था जिसका प्रमाण अशोक स्तंभ के रूप में आज भी देखा जा सकता है। विदेशी भारत न केवल व्यापार करने आते थे, बल्कि स्वयं को ज्ञानी और कलाविद बनाने के लिए भी आते थे। यहाँ से पढ़कर लौटने वालों को उनके स्वदेश में पूजा जाता था। विभिन्न मदों से भारत में जो सोना आदि बहुमूल्य पदार्थों की आवक होती थी, उसके कारण देश की समृद्धि दिन दूनी-रात चौगुनी तरक्की कर रही थी। और यही वजह है कि भारत को सोने की चिड़िया कहा जाता था। भारत की यह समृद्धि ही सबसे बड़ा कारण था कि कई सदियों तक कई विदेशी लुटेरों ने यहाँ आकर हमारे पूर्वजों की अकूत संपत्ति को लूटा, हमारे शिक्षण संस्थानों में न केवल उत्पात मचाया, बल्कि उसे ध्वस्त भी कर दिया। तक्षशिला विश्वविद्यालय, नालंदा विश्वविद्यालय, विक्रमशिला विश्वविद्यालय जैसे विश्व प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों के खंडहर इसके जीते जागते प्रमाण हैं। रही सही कसर अंग्रेजों ने 1757 ई. से 1947 ई. के बीच 190 सालों के राज में पूरी कर दी और हमें हर प्रकार से कंगाल बना दिया। इन्हीं लुटेरों में से एक था तैमूर लंग।

भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना करने वाले बाबर से 128 साल पूर्व बाबर के पूर्वज 'तैमूर' ने आज से 521 साल पहले 1498 ई. में आक्रमण किया था। दोनों हाथों से एक समान काम करने में माहिर तैमूर अपनी आत्मकथा में एक स्थान पर इस बात का जिक्र करता है कि 'मैं दोनों हाथों से तलवार चला सकता हूँ। आज मेरे लिए दोनों हाथों के बीच में फर्क करना कठिन है।' ऐसी अनेक बातों की जानकारी तैमूर की आत्मकथा से मिलती है जिसे उसने फारसी भाषा में चीन पर आक्रमण के दौरान एक फारसी विद्वान से बोलकर लिखवाया था जिसका कालांतर में अंग्रेज अनुवादक डेवी ने ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी के प्रो. व्हाइट की मदद से इसका अंग्रेजी अनुवाद किया और इस तरह 1783 में पहली बार यह किताब दुनिया के सामने आई जिसका बाद में खलील-उर-रहमान और डॉ. हमीद यजदानी ने इसका उर्दू में अनुवाद किया।

एक मामूली परिवार में जन्म लेने वाला तैमूर अपनी तलवारबाजी के बल पर सिपाही बना। इसके बाद उसने अपनी महत्वाकांक्षा को आकार देना शुरू किया तथा सेना प्रमुख बना और फिर राज्य पर कब्जा किया। लेकिन उसकी महत्वाकांक्षा यहीं नहीं रुकी। उसने अपनी सेना को संगठित किया तथा सशक्त बनाया। मैदानी क्षेत्र से लेकर दुर्गम पहाड़ी ढलान पर लड़ाई लड़ने में उसकी सेना सिद्धहस्त थी। उसकी घुड़सवार सेना का उस समय कोई जोड़ नहीं था। अपने इसी सैन्य बल पर उसने मध्य एशिया से लेकर ईरान, तुर्की, रूस और भारत तक जीता। उसके हौसले काफी बुलंद थे। उसने एक विजेता का जीवन जिया। सैकड़ों लड़ाइयाँ लड़ीं और जीता, लाखों लोगों का बेरहमी से कत्ल करवाया। उसके अत्याचार और बर्बरता की कहानी भारत से लेकर रूस और सुदूर यूरोप तक फैली है।

1498 ई. में तैमूर जब भारत आया तो उसका मकसद साफ था। वह यहाँ लूटने आया था, न कि राज्य कायम करने। उसे पता था कि भारत विविधता से भरा देश है और यही कारण था कि उसके मन में यह भय था कि कहीं यदि सभी भारतीय राजा एकजुट हो गए तो उसके लिए यहाँ से प्राण बचाकर निकलना भी मुश्किल है। लेकिन समय के साथ उसका यह भय निराधार साबित हुआ जब उसी के वंशज बाबर ने यहाँ शासन स्थापित किया, लेकिन तैमूर जब भारत की सीमा पर आया तो उसे पता चला कि भारत में 'महाभारत' नाम की एक किताब है जिसमें एक लाख से अधिक शेर (श्लोक) हैं, तो उसने इस जानकारी की कद्र की और यह माना कि यह एक सभ्य मुल्क है। यहाँ उसे युद्ध जीतना है, यहाँ की अकूत संपत्तियों को लूटना है, न कि आम जनता का कत्ल करना है। लेकिन जब उसने भारत की भूमि पर पैर रखा तो उसे यहाँ की सामाजिक विषमताएँ अद्भुत लगीं। एक ओर इतना सभ्य मुल्क और दूसरी ओर जिंदा जलाई जाती औरतें, समाज के लोगों के बीच भेदभाव की बहुत बड़ी खाई जिसमें आदमी को आदमी अपने से नीच समझता है और उसे हिकारत की नजरों से देखता है। तैमूर की यह विशेषता थी कि वह न केवल अपने धर्म की, बल्कि अन्य धर्मों की भी बेहद कद्र करता था।

इस पुस्तक के माध्यम से पाठकों के तत्कालीन भारतीय समाज के साथ ही यूरोपियन, तुर्की, ईरानी, रूसी और मध्य एशियाई समाजों की जीवन-शैली, धर्म-संस्कृति, सामाजिक परिवेश आदि के बारे में गहराई से पता चलता है।

खारा पानी

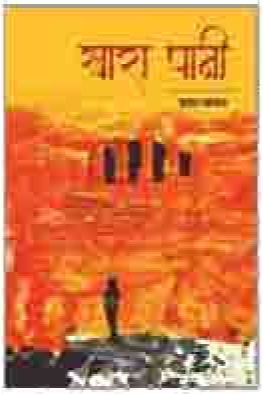

समीक्षक : प्रमोद भार्गव

लेखिका : आशा पाण्डेय

प्रकाशक : बोधि प्रकाशन, जयपुर।

पृष्ठ : 186

मूल्य : रु. 150/-

'खारा पानी' कहानी संग्रह में कहानियाँ अपने समय की नब्ज पकड़ने में सार्थक हैं, इसलिए कड़वी हैं। कहानियों में ग्रामीण समाज और शहर में जीवनयापन के लिए गाँव से आए लोगों की ऐसी त्रासदियाँ हैं, जो आर्थिक रूप से संपन्न वर्ग की मानसिक विद्रूपता से परिचय कराती हैं। इन कहानियों में गरीब, लाचार एवं वंचितों का जीवन संघर्ष है। पुरातन तथा आधुनिक जीवन मूल्यों की कश्मकश निकलते प्राण हैं। कुप्रथाओं की कुरूपता है। कर्ज में डूबे किसानों की मौत है, तो जीने के लिए पगडंडी बनाते किसान भी हैं। साफ है, संघर्षरत लोगों के जीवन के विविध रूप कथ्य का हिस्सा हैं। ये चित्र इतनी सहजता से बिंबों, प्रतीकों और लोक में व्याप्त मुहावरों के माध्यम से संपूर्ण मानवीय करुणा व संवेदना के साथ उकेरे गए हैं। कहानियों को पढ़ते हुए लगता है कि वाकई सत्य और कल्पना के सम्मिश्रण की ये ऐसी कथाएँ हैं, जो संवेदनशील व्यक्ति के अंतःकरण में बदलाव की दस्तक देकर उसे झकझोरती हैं कि हम यह कैसा समाज निर्मित कर रहे हैं?

उत्पादक समाज यानी किसान के कथानक से जुड़ी कहानी 'जागते रहो' संदेश देती है कि इसके पात्र ही नहीं, जैसे पूरे देश का उत्पादक एवं श्रम से जुड़ा समाज आजीवन त्रासदी भोगने को अभिशप्त है। अवर्षा या अतिवृष्टि की चपेट में तो यह है ही, सरकारी कामकाज में फैली अव्यवस्था और भ्रष्टाचार की मार भी सबसे ज्यादा इसी वर्ग को झेलनी पड़ रही है।

यह वह साल है, जब आम चुनाव के कारण दो बार संसद में पेश हुए आम बजट में किसान की आय दोगुनी करने और साल में छह हजार रुपये सीधे खाते में डालने के प्रावधान किए गए हैं। सरकारी आँकड़े बोलते हैं कि गत वर्ष के छह महीनों में अकेले महाराष्ट्र में 1500 किसानों ने आत्महत्या की है। यह लेखिका आशा पाण्डेय का रचनात्मक दृष्टिबोध है कि पटवारी और अन्य राजस्व कर्मचारी जो आर्थिक मदद पर भी गिद्ध दृष्टि लगाए बैठे हैं, उन्हें ठेंगा दिखाते हुए गाँव में सहकारिता का माहौल रचकर, बेरोजगार अलग-अलग सामान की दुकानें खोलते हैं। शर्त रहती है कि एक दुकान पर मिलने वाला सामान दूसरी दुकान पर नहीं मिलेगा। इससे बिक्री और आय में समानता बनी रहेगी। यह व्यवस्था मॉल और डिपार्टमेंटल स्टोरों को दरकिनार कर एक ऐसी राह दिखाती है, जिससे गाँव और कस्बों में समृद्धि के द्वार खुल सकते हैं।

'मर्ज' कहानी लोकतांत्रिक व्यवस्था पर तमाचा है। इस कहानी में ग्रामीणों का वह सतत संघर्ष है, जो उन्होंने जमींदारों-जागीरदारों से किया और फिर जब देश आजाद हो गया तो यही लोग विधायक एवं सांसद बनकर सत्ता पर काबिज हो गए। लेखिका ने इस कहानी में एक बिंब रचा है, जिसके जरिये नायक मातादीन की पत्नी पति द्वारा अनाज की चोरी के जुर्म से मुक्ति के लिए शारीरिक शोषण की विवशता झेलती है। इसके बदले में शुल्क के रूप में एक बोरी रोजाना अनाज मिलता है। मातादीन का परिवार इस अनाज का उपयोग करने की बजाय एक कोठरी में एकत्रित करता रहता है। धीरे-धीरे समय बीता और कोठरी खंडहर में तब्दील होकर मैदान में बदल गई।

'खारा-पानी' एक जिज्ञासु बालक के शहर आकर घरेलू नौकर बनने की कहानी है। जब वह घर में पानी-बिजली जैसी बुनियादी जरूरतों की फिजूलखर्ची रोकता है तो उसे डाँट-फटकार मिलती है। जिज्ञासु बालक की एक अन्य कहानी 'जंगल' भी है। इसमें शहरी सभ्यता की मानसिक विद्रूपता घने जंगल में रहने वाले आदिवासियों के मानवीय पक्ष से तुलना करके दिखाई गई है। 'यही एक राह' एक ऐसी संघर्षशील ग्रामीण स्त्री की कहानी है, जिस पर कुदरत की मारें पड़ती हैं। जब वह अपनी विधवा बहू के साथ अकेली रह जाती है तो गाँव के दबंग उसकी जमीन हड़प लेते हैं और राजस्व व पुलिस अमला आँख मूँदे रहता है। जमीन वापसी के लिए वह देवी के थाने पर अनायास सिर में देवी आ जाने का स्वाँग रचती है और उसकी समस्याएँ आश्चर्यजनक ढंग से हल होने लगती हैं।

इस संकलन की प्रत्येक कहानी एक नूतन व मौलिक कथ्य का विस्तार लिए हुए ग्रामीण, आर्थिकी और समस्याओं से जुड़े विविध आयामों के सार्थक अक्स खींचती हैं। विशेषतः जिस तरह पटवारी हलकों में फैले खेतों के नक्शों की आड़ी-तिरछी रेखाएँ मानचित्र पर उभरी होती हैं, ठीक वैसे ही लाचारी और शोषण से अभिशप्त स्त्री-पुरुषों के चेहरे इस संग्रह के पृष्ठों पर अपनी संघर्ष-गाथा कहते उभरे हैं। ये चेहरे निकम्मे के आलस्य का प्रतीक न होकर व्यवस्था के भ्रष्टाचार और विद्रूपता की ऐसी परछाइयाँ हैं, जो हर मृत्यु के पीछे अनुत्तरित प्रश्न छोड़ जाती हैं। इन कहानियों में लेखिका ने कहीं गहरे उतरकर लाचार की विवशता का यथार्थ और मर्म समझने की कोशिश की है। कहानियों का शिल्प प्रांजल भाषा और देशज मुहावरों-कहावतों से गढ़ा गया है। इसलिए कहानियाँ पाठक के लिए सहज, पठनीय व रोचक हैं।

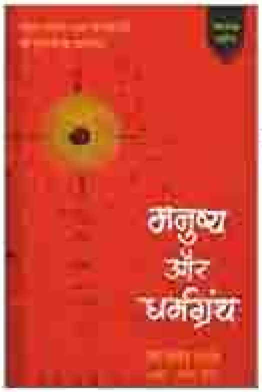

समीक्षक : जनार्दन मिश्र
लेखक : राव साहेब कसबे
अनुवादक : किशोर दिवसे
(मराठी से हिंदी)
प्रकाशक : संवाद प्रकाशन, मेरठ।
पृष्ठ : 406
मूल्य : रु. 300/-

मनुष्य और धर्मग्रंथ

धर्म का शाब्दिक अर्थ है 'धर्म संस्कृत का शब्द'। धर्म का अर्थ बहुत व्यापक है। ध+र्+म=धर्म। ध देवनागरी वर्णमाला का 19वाँ अक्षर और तवर्ग का चौथा व्यंजन है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से यह दंत्य, स्पर्श, घोष तथा महाप्राण ध्वनि है। संस्कृत (धातु) धा+क विशेषण—धारण करने वाला, पकड़ने वाला होता है। जो धारण करने योग्य है, वही धर्म है। पृथ्वी समस्त प्राणियों को धारण किए हुए है। जैसे हम किसी नियम के संकल्प को धारण करते हैं इत्यादि। इसका मतलब धर्म का अर्थ है कि जो सबको धारण किए हुए है, अर्थात धारयति-इति धर्मः। अर्थात जो सबको सँभाले हुए है। सवाल उठता है कि कौन क्या धारण किए हुए है? धारण करना सही भी हो सकता है और गलत भी।

महर्षि मनु ने धर्म के दस लक्षण बताए हैं, जो सारी मानव जाति पर लागू होते हैं— 1. धृति : सुख, दुख, हानि, लाभ, मान, अपमान में धैर्य रखना; 2. क्षमा : सहनशीलता-सामर्थ्य होने पर भी बुराई का बदला न लेना; 3. दम : मन को बुरे चिंतन से हटाकर अच्छे कामों में लगाना; 4. अस्तेय (चोरी न करना) : अन्याय से धन आदि ग्रहण न करना तथा बिना आज्ञा दूसरे का पदार्थ न लेना; 5. शौच : शरीर की अंदर-बाहर से शुद्धि रखना। शुद्ध सात्विक भोजन तथा वस्त्र, स्थान, मार्ग आदि की शुद्धि भी इसमें शामिल है; 6. इंद्रिय निग्रह : हाथ, पाँव, मुख आदि इंद्रियों को अच्छे कामों में लगाना; 7. धी : बुद्धि बढ़ाना, निरामिष भोजन करना, ब्रह्मचर्य का पालन करना; 8. विद्या : सभी पदार्थों का ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त करना, 9. सत्य; 10. अक्रोध : इच्छा के पूरे न होने पर जो क्रोध उत्पन्न होता है उसको त्यागना, अहिंसा भी धर्म के लक्षणों में शामिल है।

समय-समय पर अनेक ऋषि, मुनि, संतों ने मनुष्यों को चेताया कि धर्म के मार्ग से न भटकें। धर्म से भटका हुआ आदमी हमेशा अनैतिक कर्म करता है। जैसे किसी देश का संविधान वहाँ के लोगों को कर्तव्यों-अधिकारों से परिचित कराता है उसी तरह धर्म के लक्षण भी मनुष्य को बुराइयों से परिचित कराते हैं। जैसे संविधान की 'प्रस्तावना' संपूर्ण संविधान का सार-तत्व प्रस्तुत करती है उसी तरह धर्म के लक्षण भी मनुष्य जीवन के सार-तत्व प्रस्तुत करते हैं।

मेरी दृष्टि में मनुष्य जाति की सबसे बड़ी विडंबना यह है कि अलग-अलग पंथों में बँटे मनुष्यों ने अपनी जीवन पद्धति को लिखकर उसे धर्म ग्रंथों के नाम से मंडित कर दिया, जो उनके धर्म ग्रंथों से अलग विचार रखता है उनकी दृष्टि में वह गलत ठहराया जाता है। कार्ल मार्क्स जैसे महान चिंतक ने भी धर्म को 'अफीम' घोषित कर दिया है। जाहिर है उन्होंने भी भारतीय मनीषियों द्वारा उद्घाटित धर्म के लक्षणों का अध्ययन नहीं किया। यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि युग पुरुष महात्मा गांधी ने भारतीय मनीषियों द्वारा प्रतिपादित धर्म लक्षणों को अपनाकर पूरे विश्व में शांति की अलख जगाई। उन्होंने मानव धर्म को अलग-अलग देशों में बाँटकर नहीं परिभाषित किया। यही कारण है कि विश्व के लोग उन्हें मानव जाति का पथ प्रवर्तक मानते हैं।

अल्बर्ट आइंस्टाइन ने कहा था, "धर्म, हमारे जीवन के तमाम रहस्यों की अंतर्दृष्टि से पैदा हुआ है, खुद के लिए जो अगम्य है, वही अस्तित्व में है, सर्वश्रेष्ठ सौंदर्य और ज्ञान उसी की कोख से जन्म लेता है या प्रकट होता है, लेकिन हम उसे पूरी तरह जान नहीं पाते हैं। यही ज्ञान, यही भावना ही तो सच्ची धार्मिकता है।"

राव साहेब कसबे के अनुसार, 20वीं सदी के उत्तरार्ध में मानव और प्रकृति का अध्ययन करने वाली विज्ञान की सभी शाखाओं की सबसे बड़ी सौगात चार्ल्स डार्विन ने विकासवाद का सिद्धांत प्रतिपादित करके दी। 1859 में विश्व प्रसिद्ध पुस्तक 'जीवों की उत्पत्ति' (On the Origin of the species) उन्होंने लिखी। इस पुस्तक के 12 वर्षों के बाद 'मानव का अवरोहण' (The Descent of Man) नामक दूसरी पुस्तक भी प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में सभी धर्मग्रंथों में उल्लेखित मानव की उत्पत्ति और विकास के समस्त अज्ञानतामूलक और बे-सिर-पैर के सिद्धांत विवादग्रस्त हो गए। इस तरह विज्ञान की शाखाओं द्वारा नए सिद्धांतों को विकसित करने की भी आवश्यकता महसूस हुई। मानव किसी अलौकिक शक्ति द्वारा निर्मित किया गया प्राणी नहीं है, बल्कि वह अतिसूक्ष्म जीवों से धीरे-धीरे करोड़ों सालों में विकसित हुआ है।

राव साहेब के शब्दों में—चार्ल्स विल्किन ने भगवद्गीता का सीधा अनुवाद संस्कृत से अंग्रेजी में किया। चार्ल्स विल्किन पहले अंग्रेज विद्वान थे, जिन्होंने संस्कृत का गहन अध्ययन किया था। चार्ल्स विल्किन द्वारा 1875 में किए गए अनुवाद के पश्चात ही पश्चिमी दुनिया भगवद्गीता के अंग्रेजी अनुवाद The Song celestial-Shrimad Bhagvad Gita के माध्यम से गीता से परिचित हुई। जिस ग्रंथ के लेखक के बारे में, लेखन काल के बारे में, उसमें निहित संदेश के बारे में व उसके स्वरूप के बारे में विरोधाभासी बयान हैं ऐसी भगवद्गीता हिंदू धर्मावलंबियों के प्रेम तथा श्रद्धा का

विषय बन चुकी है। इस धर्मग्रंथ के विविध कालीन टीकाकारों ने इसमें से अपने मनोनुकूल तथा समय सापेक्ष अर्थ निकालकर इस ग्रंथ के प्रचार-प्रसार का बेहद प्रयास किया।

'स्वप्रयत्नों से गढ़ा गया प्राणी इनसान', 'मामेकं शरणं व्रज', 'जिहाद', अध्यायों में विभाजित इस पुस्तक के हर अध्याय के साथ 'संदर्भ ग्रंथों' का उल्लेख है। यह पुस्तक अनेक ग्रंथों (धर्मग्रंथों) के गहन चिंतन का परिणाम है।

समीक्षक : वाहिद खान
लेखक : सुनील खिलनानी
अनुवादक : नीलम भट्ट
प्रकाशक : मंजुल पब्लिशिंग हाउस, भोपाल।
पृष्ठ : 422
मूल्य : रु. 499/-

अवतरण : भारत के 50 ऐतिहासिक व्यक्तित्व

'अवतरण : भारत के 50 ऐतिहासिक व्यक्तित्व', अपने नाम के ही मुताबिक ऐसी शख्सियतों के व्यक्तित्व और उनके क्रांतिकारी योगदान का रेखांकन करती है, जिससे आज के भारत की मुकम्मल तस्वीर बनती है। इनमें से कई व्यक्तित्व ऐसे हैं, जिन्हें हमने पहले भी पढ़ा और उन्हें अच्छी तरह से जाना-समझा है। लेकिन जिस तरह से इस किताब में ये शख्सियतें हमारे सामने आती हैं, ज्ञान के नए दरवाजे खुलते हैं। वाद-विवाद-संवाद की गुंजाइश बढ़ती है। पढ़ते हुए बार-बार यह लगता है, "अरे, हमने ऐसे नजरिये से तो कभी सोचा ही नहीं।" जाने-माने इतिहासकार, लेखक सुनील खिलनानी ने किताब के लिए काफी श्रम और शोध किया है और उनका यह शोध कई जगह दिखाई देता है। किताब में ऐतिहासिक व्यक्तित्वों की जीवनी, निबंध या रेखाचित्र ही नहीं हैं, बल्कि भारत का 2500 साल का इतिहास भी है, जो इन व्यक्तित्वों के साथ-साथ चलता है। इतिहास से इन्हें अलग नहीं किया जा सकता। 'बुद्ध', 'महावीर', 'पाणिनी', 'कौटिल्य', 'अशोक', 'चरक', 'आर्यभट्ट', 'आदिशंकर' से शुरू होकर यह यात्रा 'एम.एफ. हुसैन', 'धीरूभाई अंबानी' तक पहुँचती है। सुनील खिलनानी ने उन्हीं शख्सियत को चुना है, जिन्होंने अपने समय और बाद की कई शताब्दियों को प्रभावित किया और आज भी देश में उनका प्रभाव कम होने का नाम नहीं लेता। आने वाले दौर में भी उनका असर रहेगा। कोई उन्हें नजरअंदाज नहीं कर पाएगा। अपनी छोटी-सी भूमिका से ही लेखक किताब का उद्देश्य स्पष्ट कर देता है, "भारत का इतिहास अनोखे ढंग से एक ऐसा स्थान रहा है, जिसमें लोग मौजूद नहीं हैं। जैसा कि अकसर कहा जाता है, इसमें राजवंश, युग, धर्म और जातियाँ हैं, लेकिन ढेरों व्यक्ति नहीं हैं।...यह पुस्तक 50 असाधारण जीवनियों के माध्यम से भारत की कहानी सुनाकर इस खोखले को मिटाने का एक प्रयोग है।" लेखक अपने इस प्रयोग में कामयाब भी हुआ है। 'बसव', 'मलिक अंबर', 'विलियम जोन्स', 'चिदंबरम पिल्ले', 'वी.के. कृष्ण मेनन', 'सुब्बुलक्ष्मी' जैसी हस्तियों को मौजूदा भारत के गढ़ने-बनाने में कितना योगदान है, हममें से कितने लोग जानते हैं? इन जीवनियों को पढ़कर हमारे ज्ञान में काफी इजाफा होता है।

किताब में हर व्यक्तित्व को एक शीर्षक दिया गया है। शीर्षक भी ऐसा जिससे शायद ही कोई असहमत हो। मसलन 'बुद्ध : भारत को जागृत करना', 'अमीर खुसरो : तूती-ए-हिंद', 'गुरु नानक : कर्मों का अनुशासन', 'मीराबाई : मैं दूसरे रास्ते जाऊँगी', 'अकबर : दुनिया और पुल', 'ज्योतिराव फुले : अवसरों तक व्यापक पहुँच', 'बिरसा मुंडा : भूमि के जनक', 'पेरियार : प्रतीकों को निशाना बनाने वाले', 'मन्टो : अरसिकतावादी', यानी शीर्षक ही पूरे व्यक्तित्व को बयाँ करते हैं। किताब में जिन व्यक्तित्वों का चयन किया गया है, उनमें से हो सकता है कि कुछ व्यक्तित्व से पाठकों की असहमति हो। लेखक को भी इस बात का अच्छी तरह से अहसास है, लिहाजा अपनी भूमिका में वे यह बात स्पष्ट करते हुए कहते हैं, "किसी का प्रतिनिधित्व करने या सबको शामिल करने की असंभाव्यता ने मुझे आजादी भी दी है।...मुझे यह भी उम्मीद है कि पाठक जोरदार ढंग से मेरे द्वारा चुने गए 50 नामों पर भी बहस करेंगे—उन पर वाद-विवाद करेंगे, जिन्हें इसमें शामिल नहीं किया गया और अन्य विकल्प सुझाएँगे।" जाहिर है बहस और विवाद तो होगा ही। पं. जवाहरलाल नेहरू और सरदार पटेल जैसे विशाल व्यक्तित्व किताब में क्यों शामिल नहीं किए गए, जबकि आधुनिक भारत के निर्माण में उनके योगदान को किसी भी व्यक्तित्व से कमतर नहीं आँका जा सकता। खासतौर से भारत का इतिहास, पं. जवाहरलाल नेहरू के बिना अधूरा है। किताब में भले ही नेहरू नहीं हैं, लेकिन उनके समकालीनों की जीवनी में वे बार-बार, अलग-अलग तरीकों से सामने आते हैं।

सुनील खिलनानी मूलतः अंग्रेजी भाषा के लेखक हैं और प्रस्तुत किताब 'इनकारनेशंस : अ हिस्ट्री ऑफ इंडिया इन 50 लाइव्स' का अनुवाद है। लेकिन अनुवादक नीलम भट्ट ने इतना अच्छा अनुवाद किया है कि यह किताब अनुवाद नहीं जान पड़ती है। अंग्रेजी जबान के विशिष्ट शब्दों और मुहावरों को उन्होंने बड़ी अच्छी तरह से हिंदी जबान और उसके प्रचलित मुहावरों में ढाला है। यही एक अच्छे अनुवादक की पहचान भी है। अलबत्ता अमीर खुसरो की हिंदवी कविता, कबीर-साखी, मीराबाई-भजन और इकबाल की फारसी-उर्दू शायरी का हिंदी अनुवाद जरूर अटपटा लगता है। इन कविताओं, साखी, भजन और शायरी को मूल जबान में ही रखा जाना चाहिए

था। क्योंकि ज्यादातर हिंदुस्तानी इन जवानों से अच्छी तरह से वाकिफ हैं। भारतीय इतिहास को कुछ खास व्यक्तित्वों के जरिये और एक अलग नजरिये से जानने-समझने के लिए 'अवतरण : भारत के 50 ऐतिहासिक व्यक्तित्व' वाकई एक बेमिसाल किताब है, जो लेखक के गहन शोध और उनकी मौलिक स्थापनाओं एवं टिप्पणियों से पाठकों को कई जगह अचरज में डालेगी। हिंदी में इस तरह की किताबों की हमेशा कमी रही है। निश्चित तौर पर 'अवतरण : भारत के 50 ऐतिहासिक व्यक्तित्व' इस कमी को पूरा करने की कोशिश भर है, जिसका कि स्वागत किया जाना चाहिए।

समीक्षक : विवेक गुप्ता
लेखिका : ऐमी मोरिन
अनुवादक : डॉ. सुधीर दीक्षित
प्रकाशक : मंजुल पब्लिशिंग हाउस, भोपाल।
पृष्ठ : 274
मूल्य : रु. 225/-

13 काम जो समझदार लोग नहीं करते

अकसर 'क्या करना है' पर जोर रहता है, लेकिन 'क्या नहीं करना है' अनदेखा रह जाता है और सारे किए-कराए पर पानी फिर जाता है। जो नहीं करना है वह हो जाए, तो नतीजा घातक भी हो सकता है। रोज नियमों का पालन करते हुए गाड़ी चलाने वाला कोई शख्स एक दिन लापरवाही कर बैठे, तो मुमकिन है कि उसे दुर्घटना का सामना करना पड़े और उसकी इतने दिनों की सतर्कता, नियमबद्धता एक पल में व्यर्थ हो जाए।

आप सकारात्मक सोच रखते हैं, किंतु आलस्य कर देंगे, तो अंततः कुछ नहीं कर पाएँगे। उलटे, सकारात्मक सोच आलस्य को बढ़ा देगी। आप अत्यंत आशावादी होकर सोचेंगे कि फलाँ काम को अभी करने की क्या जरूरत, वह तो कल एक घंटे में फटाफट हो जाएगा और जाहिर है, वह काम नहीं होगा, अनंत काल के लिए टलता रहेगा।

ऐसे में, ऐमी मोरिन की किताब '13 काम जो समझदार लोग नहीं करते' न सिर्फ सेल्फ हेल्प किताबों की भीड़ से हटकर है, बल्कि बेहद महत्वपूर्ण भी है। लेखिका ने 'न किए जाने' के मूल विचार को व्यवस्थित ढंग से समझाया है और 13 सूत्रों में इतने ही कार्यों की जानकारी दी है, जो नहीं किए जाने चाहिए।

यह समझदारी उनके नितांत निजी दुखों वाले प्रसंगों से निकलकर आई, जब उनके सामने खुद को दुर्भाग्यशाली और बेचारी मानने के दुष्चक्र में फँस जाने का खतरा था। ऐमी जब 23 साल की थीं, तभी उनकी स्वस्थ और खुशदिल माँ अचानक गुजर गईं। तीन साल बाद, माँ की पुण्यतिथि वाले सप्ताह में ही लेखिका के पति की हृदयगति रुकने से असामयिक मौत हो गई, महज 26 वर्ष की उम्र में। कुछ वर्षों बाद उनके जीवन में एक बार फिर प्रेम का फूल खिला और उन्होंने पुनर्विवाह किया, तो कुछ ही अरसे बाद उनके आत्मीय श्वसुर को कैंसर होने का पता चला। और अंततः उनकी मौत हो गई।

ऐसे दुखद घटनाक्रम से गुजरते हुए सहज ही किसी के मन में सवाल उठ सकता है कि मेरे साथ ही क्यों? ऐमी के मन में भी उठा, लेकिन फिर जल्द ही उन्हें महसूस हुआ कि ऐसा सोचना दुखों से उबरने की राह नहीं है, बल्कि इससे तो हालात बदतर ही होंगे।

इस बिंदु पर मानसिक शक्ति महत्वपूर्ण हो जाती है। यही है जो नकारात्मक भावनाओं पर तार्किक ढंग से अंकुश लगाती है और हमारी सोच के साथ ही व्यवहार को भी प्रभावित करती है। किताब में लेखिका ने 13 ऐसी आदतें, व्यवहार और मानसिक स्थितियाँ बताई हैं, जो फँसाती हैं और हालात को बदतर बना देती हैं। इनसे किसी भी सूरत में समाधान नहीं मिल सकता। मसलन, पहले अध्याय को ही लें, जो कहता है कि 'समझदार लोग अपने लिए अफसोस करने में वक्त बर्बाद नहीं करते'। इस अध्याय में वे जैक नाम के बच्चे की कहानी से कुशलतापूर्वक साबित करती हैं कि अपने साथ हुई दुर्घटना का 'सकारात्मक पक्ष' देखना जैक के लिए कितना लाभदायक रहा।

आगे के अध्यायों में भी उन्होंने निजी अनुभवों के साथ ही कुछ चर्चित हस्तियों, यहाँ तक कि आम लोगों की कहानियाँ शामिल की हैं। हर अध्याय में उन्होंने कोई एक ऐसा काम लिया है, जो समझदार लोग नहीं करते, और उसके विभिन्न पहलुओं पर तर्कसंगत ढंग से चर्चा की है। भले ही ये सुपरिचित सलाह हैं, जैसा कि अध्याय आठ कहता है—'वे बार-बार गलतियाँ नहीं करते', परंतु हम अकसर कर बैठते हैं। इस पुस्तक की विशिष्टता इस बात में है कि पाठक को ठहरकर चिंतन करने और फिर एक पक्के निर्णय पर पहुँचने का अवसर मिलता है। उदाहरण के लिए, अध्याय पाँच की विषय-वस्तु : 'समझदार लोग हर इनसान को खुश करने की चिंता नहीं पालते हैं' के बारे में हर कोई जानता है। परंतु ऐमी बताती हैं कि जानने के बावजूद हम ऐसा क्यों कर बैठते हैं और इससे बचने के लिए क्या करना चाहिए।

मूल अंग्रेजी से हिंदी में अनूदित इस किताब की भाषा सरल और सुग्राह्य है। चूँकि इसका विचार लेखिका के निजी अनुभवों से निकला है, इसलिए उनके सुझाव और तकनीकें विश्वसनीय लगती हैं। जिंदगी में सुखी और सफल होने के लिए अकसर हम जटिल सूत्रों की तलाश करते हैं, लेकिन दरअसल, सरल-सामान्य लगने वाली बातें ही ज्यादा कारगर होती हैं। '13 काम जो समझदार लोग नहीं करते' को पढ़ते हुए इसे बखूबी महसूस किया जा सकता है।

मैनी लाईव्ज़ मैनी मास्टर्स

(कई जीवन, कई देवात्माएँ)

डॉ. ब्रायन वीस

एक मशहूर मनोवैज्ञानिक द्वारा अपनी एक युवा मरीज़ की पूर्वजन्म चिकित्सा की सच्ची कहानी, जिसने उन दोनों के जीवन को बदलकर रख दिया। यह परामनोविज्ञान के क्षेत्र में चल रहे शोध-कार्यों के लिए विशेष है, खासकर उस शाखा के लिए जो कि जन्म से पूर्व और मृत्यु उपरांत अनुभवों से संबंधित है। प्रस्तुत पुस्तक अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त 'मैनी लाईव्ज़ मैनी मास्टर्स' पुस्तक का हिंदी अनुवाद है।

मंजुल पब्लिशिंग हाउस, भोपाल।

पृ. 194; रु. 250.00

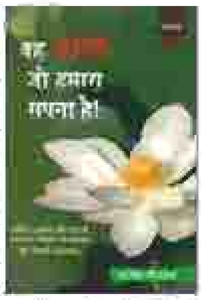

यह भारत जो हमारा सपना है!

अशोक श्रीवास्तव

व्यापक प्रसार वाली पत्रिकाओं के लिए लिखे गए संपादकीयों का संकलन है यह पुस्तक। यह दो खंडों में विभाजित है, यथा—खंड 1 हमें भारत को फिर से खोजना होगा तथा खंड 2 देश का वह चेहरा जो हम खो आए हैं। इसमें संग्रहीत पहले खंड की टिप्पणियाँ साप्ताहिक 'अक्षा ज़िंदगी' में मई 2015 से नवंबर 2017 तक प्रति सप्ताह प्रकाशित हुईं। यह एक आलेख संग्रह है जिसमें भारत-विमर्श को प्रस्तुत किया गया है।

संवाद प्रकाशन, मेरठ।

पृ. 350; रु. [illegible]

जादू सकारात्मक सोच का

निशा नंदिनी गुप्ता

विभिन्न विषयों पर आधारित 22 लेखों का संग्रह है प्रस्तुत पुस्तक। इसमें जादू सकारात्मक सोच का, भारत का गौरव है असम, भारतीय संस्कृति, राष्ट्रीय युवा दिवस, वैश्विक स्तर पर हिंदी का स्वरूप, विश्व की चार प्राचीन संस्कृतियाँ आदि लेख प्रस्तुत किए गए हैं।

ग्रंथ भारती, दिल्ली।

पृ. 194; रु. 200.00

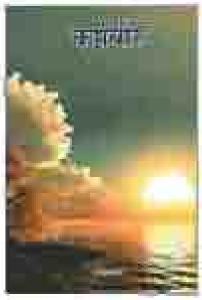

कर्मवीर

शक्तिबोध

काव्य-संरचना 'कर्मवीर', भारत वर्ष के 'सौजेन्थी' अथवा अभूतपूर्व व्यक्तियों जैसे झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, स्वामी विवेकानंद, राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, महाकवि जयशंकर प्रसाद, डॉ. विन्देश्वर पाठक, जमशेदजी नुशेरवाँजी टाटा, डॉ. सारी आज़ाद, श्री सत्येन्द्रनाथ जी बोस, डॉ. सुब्रह्मण्यन चंद्रशेखर, सुश्री लता मंगेशकर, योगगुरु स्वामी रामदेव जी, डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम द्वारा अपने-अपने सुनिश्चित कर्मक्षेत्रों में भारतीय समाज के हित में देशभक्ति एवं मानवता के विकास हेतु किए योगदान की सरस काव्यात्मक प्रस्तुति है।

प्रभा प्रकाशन, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश।

पृ. 148; रु. 200.00

खिड़कियों से झाँकती आँखें

सुधा ओम ढींगरा

'वसूली', 'एक गलत कदम', 'ऐसा भी होता है', 'खिड़कियों से झाँकती आँखें', 'कॉस्मिक की कस्टडी', 'यह पल उस तक पहुँचा देना', 'अँधेरा-उजाला' तथा 'एक नई दिशा' नामक आठ कहानियों का कहानी संग्रह है प्रस्तुत पुस्तक। लेखिका की अपनी शैली है जो अपनी पूर्ण सादगी के साथ पाठक को बाँधे रखने की सामर्थ्य रखती है। विषय जो भी हो सीधी, सरल व सहज भाषा में कहानी आगे बढ़ती है।

शिवना प्रकाशन, मध्य प्रदेश।

पृ. 123; रु. 150.00

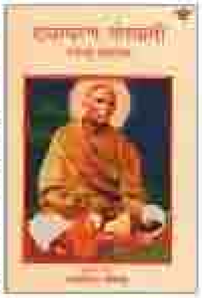

राधाचरण गोस्वामी

रचना-संचयन

चयन एवं संपादन : रामनिरंजन परिमलेंदु राधाचरण गोस्वामी जिन्होंने कवि, निबंधकार, नाटककार, पत्रकार, समाज सुधारक, देशप्रेमी आदि भूमिकाओं में भाषा, समाज और देश को अपना महत्वपूर्ण अवदान दिया। वे ब्रज की ही नहीं, बल्कि हिंदी साहित्य की भी विभूति थे। देशोपकार अर्थात् भारतोद्धार उनके संपूर्ण गद्य लेखन का मूलमंत्र था। इस पुस्तक में उनकी रचनाओं का संचयन किया गया है।

साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली।

पृ. 416; रु. 315.00

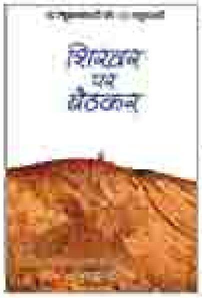

शिखर पर बैठकर

10 लघुकथाकारों की 110 लघुकथाएँ

संपादक : सतीश राठी

इंदौर का लघुकथा परिदृश्य ऐतिहासिक रूप से अत्यंत सक्रिय और समृद्ध परिदृश्य है। प्रस्तुत पुस्तक में इंदौर शहर के कुछ प्रमुख लघुकथाकार, यथा-अंतरा करवड़े, अशोक शर्मा भारती, चेतना भाटी, ज्योति जैन, डॉ. पुरुषोत्तम दुबे, सतीश राठी, सीमा व्यास, सूर्यकान्त नागर, डॉ. वसुधा गाडगिल तथा डॉ. योगेन्द्रनाथ शुक्ल शामिल हैं। इन लघुकथाओं में विभिन्न विषयों को समेटने का सफल प्रयास किया गया है।

क्षितिज प्रकाशन, इंदौर।

पृ. 144; रु. 200.00

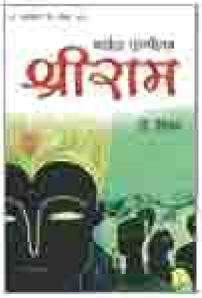

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम

डॉ. विनय

रामकथा के विभिन्न पात्रों को इस कथा के मूल आधारभूत में ही रखकर मनन और अनुसंधान से, औपन्यासिक रूप में चित्रित करने का प्रयास किया गया है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम का औपन्यासिक शैली में यह प्रस्तुतीकरण पाठकों को अपनी ओर आकर्षित करेगा। पुस्तक को विभिन्न पाठों में विभाजित किया गया है। पुस्तक में पहला पाठ जन्म और बाल्यकाल है तथा अंतिम पाठ राम का स्वर्ग गमन है।

[illegible] बुक्स, नई दिल्ली।

पृ. 176; रु. 150.00

काव्यप्रस्थान

(आत्मकथनपरक कविताएँ)

भारतेन्दु मिश्र

कवि भारतेन्दु मिश्र की कविताओं का संग्रह है 'काव्यप्रस्थान'। इन कविताओं का रचना-प्रकृति, यात्रा प्रसंग और जीवन की व्याख्या में अंतर्निहित है। इसमें कवि के जीवन के अनुभवों एवं यात्राओं से प्रभावित होकर लिखी गई कविताओं को संगृहीत किया गया है जैसे कुल्लू यात्रा से प्रभावित होकर डलझील में तैरते दोंगे तथा ओरछा की यात्रा से प्रभावित कविता कविप्रिया की सिसकनें, डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी के 80वें जन्मदिन को स्मरण करती 'मैं डीयर पार्क हूँ' कविता आदि।

अनुज्ञा बुक्स, शाहदरा, दिल्ली।

पृ. 72; रु. 125.00

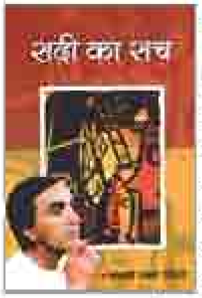

सदी का सच

भगवती प्रसाद द्विवेदी

लघुकथा साहित्य की एक लोकप्रिय विधा है। इसके संक्षिप्त फलक पर घटना, संवाद और चरित्र जैसे कथातत्वों का संक्षिप्त संयोजन, अभिव्यक्ति की दृष्टि से प्रभावशाली होता है। प्रस्तुत लघुकथा संग्रह को पढ़ते हुए इस बात को समझा जा सकता है। इनमें समाज के अनेकानेक चेहरों-मुखौटों से पाठक का आमना-सामना होता है। कथाकार ने सामाजिक-राजनीतिक एवं आर्थिक व्यवस्था को आदमी के साथ जुड़ी विसंगतियों के साथ उजागर किया है।

अभिधा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर।

पृ. 160; रु. 200.00

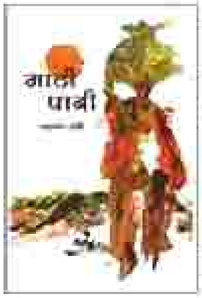

माटी पानी

रामानन्द शास्त्री

प्रस्तुत काव्य संग्रह की कविताएँ कवि की सत्यनिष्ठा और जन सामान्य के प्रति उदात्त भावना तथा शोषण अन्याय-अनीति के प्रति विरोध की कविताएँ हैं। कवि की विषय विविधता उन्हें एक सजग एवं संवेदनशील रचनाकार के रूप में पाठकों के समक्ष लाती है। संग्रह में लगभग 60 हिंदी कविताएँ तथा 12 भोजपुरी कविताएँ शामिल की गई हैं।

[illegible] प्रकाशन, वाराणसी।

पृ. 144; रु. 125.00

आधुनिक इतिहास में विज्ञान

ओम् प्रकाश प्रसाद

आधुनिक भारत में विज्ञान के विभिन्न चरणों पर संक्षेप में प्रकाश डालती इस पुस्तक को 46 अध्यायों में विभाजित किया गया है। प्रथम अध्याय में आधुनिक भारतीय वैज्ञानिक उपलब्धियों की चर्चा की गई है। आधुनिक तकनीक और सामाजिक विकास से भारत भिन्न-भिन्न रूपों में प्रभावित हुआ, इसका विशद वर्णन दूसरे अध्याय में है। इसके अतिरिक्त, 'द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान तकनीक एवं समाज', 'द्वितीय महायुद्ध के उपरांत', 'विज्ञान एवं पेट्रोल', 'प्लास्टिक और कागज़ तकनीक', 'आपदा प्रबंधन' और 'भारतीय विज्ञान एवं अभियंताओं का योगदान' आदि आधुनिक भारत के विज्ञान के विभिन्न चरणों पर प्रकाश डाला गया है।

राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

पृ. 252; रु. 695.00

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की द्विमासिक पत्रिका

पुस्तक संस्कृति

के सदस्य बनें

सदस्यता प्रपत्र

नाम : ____________________

पता : ____________________

जिला : __________ शहर __________ राज्य __________ पिन कोड __________

फोन : __________ ई-मेल : __________

मैं राशि रु. (अंतर्देशीय : 225/- रु.; अंतर्राष्ट्रीय : 1000/- रु.) __________
वार्षिक सदस्यता हेतु (बैंक ड्राफ्ट/नगद) __________ ड्राफ्ट संख्या __________
बैंक एवं शाखा द्वारा जारी __________
भेज रहा/रही हूं (संलग्न)।

सदस्यता शुल्क बैंक ड्राफ्ट द्वारा (नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया के पक्ष में देय), सदस्यता प्रपत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेजें :

संपादक
पुस्तक संस्कृति
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, 5 नेहरू भवन, वसंत कुंज, संस्थानिक क्षेत्र, फेज-2,
नई दिल्ली-110070
ई-मेल : editorpustaksanskriti@gmail.com
दूरभाष : 011-26707758/26707876

ऑनलाइन शुल्क भेजने का विवरण इस प्रकार है :

For	National Book Trust, India
Bank	Canara Bank
Branch	Vasant Kunj, New Delhi-110070
A/c No.	3159101000299
IFSC Code	CNRB0003159
MICR Code	110015187

शुल्क भेजने के पश्चात् कृपया फोन अथवा पत्र द्वारा सूचना अवश्य दें।

शेष पृष्ठ 5 से जारी-->

क्या आप दिव्यांगजन हैं?
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
NATIONAL BOOK TRUST, INDIA
हमें आपके मात्र 5 मिनट चाहिए!
कृपया कोरोना महामारी से संबद्ध हमारे मनो-सामाजिक अध्ययन हेतु
तैयार की गयी इस ऑनलाइन प्रश्नावली में भाग लें
और अपनी भावनाओं एवं अनुभवों को हमसे साझा करें।
सामाजिक दूरी को हाँ कहें
और भावनात्मक दूरी को ना कहें
Visit: nbtindia.gov.in
#HelpUsToHelpYou

क्या आपका परिवार
कोविड-19 से प्रभावित है?
हमें आपके मात्र 5 मिनट चाहिए!
कृपया कोरोना महामारी से संबद्ध हमारे मनो-सामाजिक अध्ययन हेतु
तैयार की गयी इस ऑनलाइन प्रश्नावली में भाग लें
और अपनी भावनाओं एवं अनुभवों को हमसे साझा करें।
Visit: nbtindia.gov.in

क्या आप एक डॉक्टर या आवश्यक
सेवाएँ प्रदान करने वाले व्यक्ति हैं?
हमें आपके मात्र 5 मिनट चाहिए!
कृपया कोरोना महामारी से संबद्ध हमारे मनो-सामाजिक
अध्ययन हेतु तैयार की गयी इस ऑनलाइन प्रश्नावली
में भाग लें और अपनी भावनाओं एवं
अनुभवों को हमसे साझा करें।
सामाजिक दूरी को हाँ कहें
और भावनात्मक दूरी को ना कहें
Visit:
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
NATIONAL BOOK TRUST, INDIA
क्या आप
बुजुर्ग वर्ग से हैं?
सामाजिक दूरी को हाँ कहें
और भावनात्मक दूरी को ना कहें
हमें आपके मात्र 5 मिनट चाहिए!
कृपया कोरोना महामारी से संबद्ध हमारे
मनो-सामाजिक अध्ययन हेतु तैयार की गयी
इस ऑनलाइन प्रश्नावली में भाग लें और
अपनी भावनाओं एवं अनुभवों को हमसे
साझा करें।
Visit: nbtindia.gov.in
#HelpUsToHelpYou

RNI NO. DELHIN / 2016 / 68219

मनोरंजन, ज्ञान और जिज्ञासा की अनूठी दुनिया!

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के कुछ नए प्रकाशन

स्त्री-विमर्श : सर्जनात्मक संसार

मालती जोशी

प्रतिनिधि साहित्य

संक.: कमल किशोर गोयनका, अवनिजेश अवस्थी, कृष्ण शर्मा

प्रस्तुत पुस्तक न्यास के अनेक अभिनव उपक्रमों में से एक है जिसमें एक ही जिल्द में हिंदी साहित्य की एक सुपरिचित हस्ताक्षर मालती जोशी के पूर्ण साहित्य के कुछ चुनिंदा अंशों को इस माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है, ताकि पाठक को रचनाकार के संपूर्ण साहित्य की एक झलक एक ही स्थान पर मिल सके और वह रचनाकार के समग्र साहित्य का आस्वाद संक्षेप में ले सके।

पृ. 354; रु. 390.00

अजातशत्रु श्रीप्रकाश

नंदकिशोर किशोर

एक शोध प्रबंध के रूप में लिखित

इस पुस्तक में लेखक ने श्रीप्रकाशजी के राजनीतिक करियर और दर्शन के विकास के साथ-साथ सार्वजनिक जीवन में उनकी भूमिका पर प्रकाश डाला है। यह पुस्तक श्रीप्रकाशजी के लेखों, उनकी अप्रकाशित डायरी, पत्र व्यवहार तथा अन्य निजी पत्रों के साथ-साथ उनके संबंधियों, मित्रों, प्रशंसकों, छात्रों और अन्य समकालीनों के साक्षात्कारों पर आधारित है। डॉ. किशोर द्वारा प्रस्तुत यह जीवनी उस महान व्यक्तित्व की सादगी और सक्षमता दोनों ही पक्षों का विविधतापूर्ण वर्णन करती है।

पृ. 132; रु. 135.00

अंधेरे में जगमग

सुलोचना वर्मा

'जीवन के छह अध्याय', 'विधि का विधान', 'बोझ मुक्त', 'मुट्ठीभर आसमान', 'कमला कमलिनी', 'कर्तव्य', 'अतीत', 'पुरुषोत्तम', 'सेल्फी' आदि 30 कहानियों का संग्रह है प्रस्तुत पुस्तक। यह न्यास की 'नवलेखन प्रोत्साहन योजना' के अंतर्गत प्रकाशित की गई है। कहानियों में रचनात्मकता का नया सौंदर्य है, कहने का नया शिल्प है और गहन अनुभूति का ताना-बाना भी, जो अपनी मौलिक सोच और नवोन्मेषी विचारों से समृद्ध है।

पृ. 148; रु. 180.00

वीणापाणि महांति

की श्रेष्ठ कहानियाँ

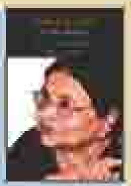

संक. एवं संपा.: शिवानंद सिंह

अनुवाद : सुजाता शिवेन

ओड़िया कथा साहित्य को समृद्ध करने में वीणापाणि महांति का योगदान उल्लेखनीय है। जीवन के प्रति खूबसूरत नज़रिया और संतुलित विचारधारा ने वीणापाणि महांति के साहित्य को कई रंगों और रस से भर दिया है। सामाजिक, पारिवारिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक विषयों पर इनकी कहानियाँ हैं। कहानियों को पढ़ते हुए पाठक को लगता है जैसे हमारे समाज में घट रही घटनाएँ प्रत्यक्ष नज़र आ रही हैं क्योंकि इनमें अनुभव और अभिज्ञता का पूर्ण रूप है। प्रस्तुत पुस्तक में 38 कहानियाँ संकलित की गई हैं।

पृ. 340; रु. 370.00

डेस्क पर लिखे नाम

उपासना

चित्र : निखलेश इलक्कर

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा नेहरू बाल पुस्तकालय पुस्तकमाला के अंतर्गत 12 से 14 वर्ष के बच्चों के लिए प्रकाशित इस पुस्तक में 24 बाल कथाएँ संकलित हैं। बाल मन को ध्यान में रखते हुए सभी कहानियों में आकर्षक चित्र बनाए गए हैं जिससे कहानियों में रोचकता का पुट भी शामिल हो जाता है। इसमें स्कूल और दोस्त, किताबें बचाओ, जुगनू जैसे सपने, चतुराई वाली कमली माँ, गोल-गोल वर्तमूल, छुक-छुक गाड़ी का इंजन, बुजुर्गों की मदद आदि विभिन्न विषयों पर आधारित कहानियाँ हैं।

पृ. 148; रु. 90.00

आकाशवाणी साहित्य संपदा, भाग-4

प्रधान संपा. : शशि शेखर वेम्पति

संपादक : ऋतम्भरा शर्मा

अतिथि संपा. : अशोक त्रिपाठी

साहित्य के क्षेत्र में आकाशवाणी ने अनेक स्मृतियों को संजोने का विलक्षण कार्य किया है। एक समय था जब आकाशवाणी अपने प्रसारित कार्यक्रमों को विभिन्न माध्यमों से पत्रिका के रूप में प्रकाशित करती थी, जिसमें साहित्यिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक विषयों पर साहित्य के विभिन्न रूपों में आलेख प्रकाशित कर जनसामान्य तक पहुँचाने का प्रयास होता था। अब वही साहित्य संपदा को पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। आकाशवाणी साहित्य संपदा शृंखला के अंतर्गत यह चतुर्थ खंड है।

पृ. 356; रु. 600.00

चलता हूँ देश की धरती तुझे

संपा.: सोमदत्त शर्मा

पद्मश्री ब्रह्मदेव शर्मा 'भाई जी' की आकाशवाणी द्वारा रिकॉर्ड की गई रेडियो जीवनी का शब्द रूप है यह पुस्तक। आकाशवाणी ने भाईजी की जीवनी को प्रश्नोत्तर के रूप में प्रस्तुत किया है। प्रश्न आकाशवाणी के प्रतिनिधि अधिकारियों के तथा उत्तर भाईजी के। इस रूप में यह जीवनी प्रामाणिक और जीवंत बन गई है।

पृ. 88; रु. 115.00

nbt.india

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार

नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.

फोन : 011-26707761 ● ई-मेल : nro.nbt@nic.in

वेबसाइट : www.nbtindia.gov.in